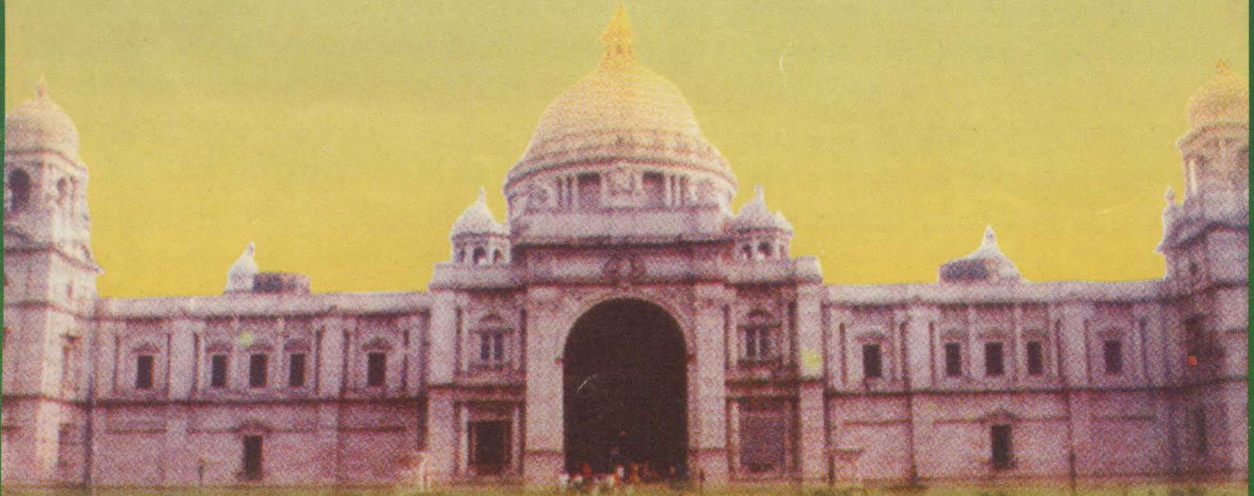


# जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2531

## प्रतिभास्थली

दयोदय तीर्थ, तिलवाराघाट,  
जबलपुर (म.प्र.)  
का प्रतिरूप



चैत्र, वि.सं. 2062

अप्रैल, 2005

# दर्शन-प्रदर्शन

● आचार्य श्री विद्यासागर जी



यदि हमें महावीर भगवान् बनना है, तो पल-पल उनका चिन्तन करना अपेक्षित है। ध्यान रखिये, महावीर जयन्ती का आयोजन भले ही चौबीस घण्टे के लिए हो, यदि वह महावीर बनने के लिए है, तो वह दो-तीन दिनों का भी हो सकता है और वह क्रम भी आ सकता है कि आप ३६५ दिन भी महावीर भगवान् के जीवन के लिए समर्पित कर देंगे, तो फिर महावीर बनने में कोई देर नहीं लगेगी। इस प्रकार जितना समय आप महावीर के लिए निकालेंगे, उतना उनकी ओर बढ़ जायेंगे। केवल उनका जय-जयकार ही पर्याप्त नहीं है।

महावीर भगवन् का दर्शन-प्रदर्शन और आज तो तीसरा चल पड़ा है। दर्शन अपनी ओर इंगित करता है। दर्शन अपने लिए है, अपनी आत्मा की उन्नति के लिए है, विकास के लिए है और अनुभूति के लिए है। दर्शन अर्थात् देखना किन्तु प्रदर्शन में विशेष देखना नहीं, दिखाना होता है। 'स्व' को देखना होता है। दिखाने में कोई दूसरा होता है। देखना-दिखलाना यह 'स्व' और 'पर' की ओर इंगित कर रहे हैं। आपकी क्रियाएँ देखने की ओर नहीं, दर्शन की ओर नहीं, दिखाने की ओर इंगित करती हैं। प्रत्येक व्यक्ति इसी में धर्म निहित मानता है। वह सोचता है कि मैं कम-से-कम एक व्यक्ति को तो समझा दूँ, एक व्यक्ति तैयार हो जाये। वह दूसरे को समझाने के लिए समझता है। इसप्रकार आपकी प्रक्रिया-प्रणाली अनादि अनन्त परम्परागत क्रमबद्ध चल रही है। इसलिए मैं जोर देकर कहता हूँ कि क्रमबद्ध पर्याय दिखाने की तो हो रही है, देखने की नहीं, दर्शन के विषय में यदि क्रमबद्ध पर्याय आये, तो उद्धार हो जाये। व्यक्ति जब दार्शनिक बन जाता है, तो वह हजारों दार्शनिकों की उत्पत्ति का कारण बन जाता है और एक व्यक्ति यदि प्रदर्शक बन जाता है, तो लाखों-करोड़ों का प्रदर्शन आरम्भ कर देता है। प्रदर्शन की क्रिया बहुत सरल है। देखा-देखी हो सकती है, इसमें विशेष आयास की आवश्यकता नहीं है। प्रदर्शन के लिए शारीरिक, शब्दिक या बौद्धिक प्रयास पर्याप्त हैं, किन्तु दर्शन के लिए ये तीनों गौण हैं, मौन हैं, उसमें तो आध्यात्मिक तत्त्व प्रमुख है।

दर्शन के साथ महावीर भगवान् का सम्बन्ध था, प्रदर्शन के साथ नहीं। उन्होंने कितनी साधना की, इसका ढिंढोरा नहीं पीटा। सब कुछ मिलने पर भी यह नहीं कहा कि मुझे बहुत कुछ मिला था। प्रदर्शन करने से दर्शन का मूल्य कम हो जाता है। उसका मूल्यांकन सही यही है कि दर्शन को दर्शन ही रहने दें। दर्शन को यदि प्रदर्शन के साथ सम्बद्ध करते हैं, तो दर्शन का मूल्यांकन समाप्त हो जाता है। प्रदर्शन के साथ यदि दिग्दर्शन होने लगता है, तो उसका मूल्य और भी कम हो जाता है। जब आप दर्शन नहीं करेंगे, तो दूसरे को क्या करवा सकेंगे। प्रदर्शन भी मूल्य रखता है, उसके लिए जिसने दर्शन किया हो। प्रदर्शन दूसरे के लिए होता है, उसमें दूसरे की अपेक्षा रहती है। आपका खान-पान, रहन-सहन आदि प्रदर्शन के जीते-जागते उदाहरण हैं। ऐसे प्रदर्शन से हम अपने जीवन में आकुलता पैदा कर लेते हैं। आपका श्रृंगार भी दूसरे के लिए निर्धारित है। दूसरा देखनेवाला नहीं आयेगा, तो सारे श्रृंगार फालतू हो जायेंगे। आप दर्पण अपने लिए नहीं, दूसरे के लिए देखते हैं कि मैं अच्छा दीख पड़ूँ। आप मन में यह सोच रहे होंगे कि महाराज तो सारी-की-सारी पोल खोले जा रहे हैं। सही बात यह है कि आपका जीवन अपने लिए नहीं, दूसरों को दिखाने के लिए होता जा रहा है। मुझे यह तो बताइये कि अपने लिए आपका क्या है? आपकी कौन सी क्रिया अपने लिए होती है? जितनी मात्रा में आपकी क्रिया अपने लिए होती है, उतनी मात्रा में आप सही उतरे हैं, बाकी सब ठीक है। आप विचार कीजिये कि चौबीस घण्टों में कौन-सी और कितनी क्रिया रुचिपूर्वक आपकी अपने लिए होती है। जमाना प्रदर्शन में बह गया और बहता चला जा रहा है।

दर्शन अनुभूतिमूलक होता है और प्रदर्शन अनुभूतिपरक नहीं होता। दूसरों का दर्शन किया हुआ दिखना होता है। महावीर भगवान् अनुभूति को महत्त्व देते हैं, वे ज्ञान को इतना महत्त्व नहीं देते। वह ज्ञान महत्त्वपूर्ण है, जो अनुभूत हो चुका है, पराया नहीं है। पराया अनुभूत नहीं हो सकता, अपना अनुभूत हो सकता है। अपना ही सब कुछ है, जो पराया है, वह हमारे लिए कुछ नहीं है। वह हमारे लिए कोई मूल्य नहीं रखता। वह है लेकिन हमारे लिए उसका कोई मूल्य नहीं है। महावीर भगवान् का अनन्त ज्ञान भी हमारे लिए सब कुछ नहीं है, कुछ है। हमारे लिए भी जो ज्ञान मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न हुआ है, वर्तमान में मोक्षमार्ग के लिए वह ज्ञान सब कुछ है। महावीर भगवान् का

केवलज्ञान हमारे लिए कोई कार्यकारी नहीं है। हमारा एक अक्षर का ज्ञान भी हमारे लिए कार्यकारी हो सकता है, क्योंकि इसके साथ अनुभूति का पुट लगा है। महावीर भगवान् के ज्ञान के साथ हमारे अनुभव का कोई पुट नहीं है। उनका अनन्त ज्ञान है, हमारा क्षयोपशम ज्ञान है। उसका आधार लेकर हमारा यह ज्ञान क्षयोपशम को प्राप्त हुआ है, इसलिए वह पूज्य है, यह हम कह सकते हैं, उस ज्ञान को हम नमस्कार करने को तैयार हैं। लेकिन भगवान् कहते हैं कि यह नमस्कार करो, मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है। मैं नमस्कार का मौका तो हूँ नहीं, फिर भी नमस्कार करते हुए 'तद्गुणलब्धये' कहो तो ठीक है, यही बेहतर है। भगवान् ने सारा राज्य छोड़ा, लेकिन हम तो सारा-का-सारा चाहते हैं।

स्वरूप ज्ञान नहीं होने के कारण ऐसा हो रहा है। अपने पास जो निधि है, उसका अनुभव नहीं होने के कारण वह दूसरे की निधि के ऊपर ही अपना जीवनव्यतीत करना चाहता है, इसलिए उसका जीवन अपूर्ण, अधूरा है। जो व्यक्ति अपने जीवन को सम्पूर्ण बनाना चाहता है, वह दूसरे पर आधारित-निर्धारित रहना पसन्द नहीं करेगा। वह आलम्बन तो लेगा, वह क्रिया अपना लेगा, लेकिन वह लक्ष्य स्वावलम्बन का रखेगा। अतः हमारा लक्ष्य दर्शन होना चाहिए। प्रदर्शन के साथ भी यदि लक्ष्य दर्शन का है, तो भी ठीक है। लेकिन लक्ष्य दर्शन का न रहकर प्रदर्शन ही रह जायेगा, तो ध्यान रखिये, हमारा जीवन विकास की ओर नहीं बढ़ रहा है, विनाश की ओर चल रहा है। पूर्ण विनाश तो नहीं होगा, किन्तु विकास नहीं होना ही तो विनाश है। आज तक हमारा ज्ञान अपूर्ण रहा, अधूरा रहा, थोड़ा रहा, उसका कारण क्या है? उसका एकमात्र कारण यह है कि दूसरों के दर्शन करके और दूसरों के माध्यम से ही सुख पाने का लक्ष्य बनाया, इसलिए यह सारा-का-सारा घोटाला हो गया। अभी कोई बात नहीं है। जो होना था, वह तो हो गया, लेकिन आगे के लिए कम-से-कम उस ओर न जायें। भले ही राग का अनुभव हो रहा हो, अज्ञानता का अनुभव हो रहा हो, किन्तु इस अनुभव के विषय में चिन्तन करें। आत्मा रागी नहीं है, आत्मा वीतरागी है, कह दिया कुन्दकुन्द ने। कुन्दकुन्द ने कहा नहीं, उन्होंने अनुभव किया था कि आत्मा वीतरागी है। हम रटने लगे कि आत्मा वीतरागी है, इस तरह हम राग का अनुभव कर रहे हैं और आत्मा को वीतरागी हम कहते चले जायें, तो यह ज्ञान ठोस नहीं माना जाता, प्रमाण नहीं माना जाता, असली नहीं माना जाता। उधार खाते का यह ज्ञान है। उधार खाते की पोल जल्दी खुल जाती है। वह काफी दिन तक नहीं टिकता। कितने दिनों तक काम आयेगा? अपने अन्दर यदि पानी हो, कुँआ हो, तो उसमेंसे पानी भर-भरकर ले सकते हैं, लेकिन आप तो नल पर

आश्रित हैं, नलोंका, टोंटियों का जमाना आ गया। आप कुँए के पास जा नहीं सकते। जिसके पास कुँआ है, उसके पास हर समय झरना झर रहा है। ताजा-ताजा खूब पानी आता रहता है, वह कोई उधार खाता नहीं।

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं जो कह रहा हूँ, उसे भी शत-प्रतिशत ठीक मत मानों, क्योंकि मैं जो कह रहा हूँ, वह अपने अनुभव की बात कह रहा हूँ। आप इसके माध्यम से अपने अनुभव की तुलना करो। ठीक बैठे तो ठीक, नहीं तो ठीक हम तो राग का अनुभव कर रहे हैं, लेकिन वीतरागता का प्रदर्शन कर रहे हैं। वह दर्शन का प्रदर्शन नहीं हो रहा है, वह कुन्दकुन्द का प्रदर्शन हो रहा है। इस माध्यम से कुन्दकुन्द की प्रभावना तो हो जायेगी।

रत्नाकर कवि दक्षिण भारत के कवियों में मुकुट-कवि माने जाते हैं। "भरतेश वैभव" उनका एक अद्भुत काव्य है। वह महाकाव्य माना जाता है। उनका कहना है कि जो व्यक्ति दूसरे के माध्यम से जीवन व्यतीत कर रहा है, वह तभी तक प्रशंसा कर सकता है जब तक वह गुमनाम है, लेकिन जब वह अपने अनुभव की ओर दृष्टिपात करता है, उस समय वह कहता है कि ऐसा अनुभव तो नहीं होता, यह कहना ठीक है। लेकिन जो व्यक्ति उस ओर जाता ही नहीं, देखता ही नहीं, अनुभव नहीं करता, तुलना भी नहीं करता, उस व्यक्ति का जीवन तो और भी अंधकारमय है। वह उसी के माध्यम से चलता जा रहा है, वह निरर्थक है। उसमें उन्होंने एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। एक कौआ या बन्दर था। वह ऊपर से पके अंगूर (द्राक्ष) खा रहा था। उसका दोस्त सियार वहाँ आया। उसने पूछा कि तुम ऊपर क्या कर रहे हो, वहाँ क्या खा रहे हो? बन्दर ने कहा कि क्या कहूँ- बड़ा स्वाद आ रहा है। तुम भी ऊपर आ जाओ, तो मजा आ जायेगा। अंगूर ऐसे पके हैं कि बस कहने के लिए भी फुरसत नहीं है, मीठा अनुभव हो रहा है। एकदम पटकूँ तो वह भी ठीक नहीं है। नीचे धूल है, उसके कारण अंगूर की मिठास और स्वाद समाप्त हो जायेगा। ऊपर ही आ जाओ तो बहुत अच्छा है। लेकिन वह सियार ऊपर कैसे जाता? उसने प्रशंसा भी सुन ली, उसकी इच्छा भी हो गयी। उसने तीन-चार बार छलांग भी लगा ली। अब तो उसके पैरों की शक्ति कम हो गयी, चौथी बार में उसकी वाणी खिर गयी कि अंगूर बहुत खट्टे हैं। यही हमारा हाल हो रहा है। दर्शन और प्रदर्शन में यही तो अन्तर है। छीना-झपटी के कारण परिस्थितिवश आजकल गहनों का प्रदर्शन अवश्य कम हो गया है। सभा में फोटो खींची गयी हो, उसमें अमुक व्यक्ति का फोटो नहीं हो, तो उसके लिए उसका कोई मूल्य नहीं है। जैसे कि वह फोटो में है। अब आप ही सोचिये कि आप फोटो में हैं या फोटो आप में है? ऐसे

प्रदर्शन के अनेकों उदाहरण दिये जा सकते हैं। एक व्यक्ति कमीज के कालर को इधर-उधर कर रहे थे। मैंने सोचा कि खटमल तो नहीं है। वहाँ खटमल नहीं था, वे गले में पहनी हुई चैन को बाहर ला रहे थे। उन्हें उसे दिखाना था। अन्दर कौन देखे? अन्दर तो आत्मा देख सकता है, लेकिन आत्मा के लिए वह चैन है कहाँ? चैन के द्वारा जो 'चैन' मिल जाती है, वह चैन तो दूसरों पर आश्रित है। प्रदर्शन के माध्यम से जो सुख-शान्ति का अनुभव करता है, उस व्यक्ति के सामने दुनिया हो, तभी तो पूर्ति हो सकती है।

महावीर भगवान् का सिद्धांत, सुख का सिद्धांत था। सुख की अनुभूति अपने ऊपर निर्धारित है। अनन्त चतुष्टय को लिये हुए सिद्धान्त प्राप्त गौतम स्वामी बैठे हैं, वे भी अपने लिए सुख-स्वमुख की अनुभूति करवाने वाले नहीं हैं। स्व-पर भेद विज्ञान इसी को कहते हैं। प्रदर्शन तो अनन्त काल हो चुका। अब लोग कुछ भी कहें हमें अपना रास्ता प्रशस्त देखना है। भीड़ बनी रहेगी, क्योंकि सम्यग्दृष्टि की संख्या एक है, मिथ्यादृष्टि की संख्या अनन्त है। तीर्थंकर भी इस संख्या का विलोप-अन्त नहीं कर सके। और दूसरी बात यह है कि अनेकान्त की कीमत, दर्शन की कीमत तभी हो जब लोग प्रदर्शन करने लग जाते हैं। सम्यक्त्व के साथ मिथ्यात्व रहता है, दुनिया में रहेगा ही, उसका संसार में अभाव नहीं होगा। किन्तु हमारी आत्मानुभूति में संसार है, तो हम अभाव कर सकते हैं। और सम्यक्त्व की अनुभूति हमारी हो सकती है, दुनिया के लिए नहीं समझाने का प्रयास प्रदर्शन में ही आ जाता। ऐसा नहीं है कि छद्मस्थावस्था में दर्शन की प्रणाली नहीं हो। दर्शन तो चालू होना ही चाहिये, किन्तु प्रदर्शन के लिए स्थान आचार्यों ने दिया ही नहीं। दिग्दर्शन वही करता था, जो दर्शन कर लेता था।

कुन्दकुन्द स्वामी ने यह लिखा था 'चुक्केज्ज छलं ण घेतव्वं', समयसार का मैं दिग्दर्शन आप लोगों को भी करवा रहा हूँ, नपे-तुले शब्दों में चूक जाऊँ, चूँकि छद्मस्थ हूँ, तो कुछ नहीं ग्रहण करना। 'पंचास्तिकाय' उनका प्राकृत ग्रन्थ है। जयसेनाचार्य ने उसकी अपनी टीका के अन्तर्गत उल्लेख किया था कि श्रुत का कोई पार नहीं है, काल बहुत अल्प है। उसमें एक उपाधि (टाइटिल) बहुत अच्छी है-हम दुर्मतिवाले, देखिये आचार्यों ने यह नहीं कहा तुम दुर्मतिवाले, आचार्यों की क्षमता देखिये, उनकी उदारता भी देखिये। हम लोग बहुत दुर्मतिवाले हैं, 'हम' लोग बड़े मूर्ख हैं, हम लोग बहुत छद्मस्थ हैं। इस प्रकार हम कहने से सारे लोग आ गये। यह भी एक कहने की शैली है। इसमें भी अनेकान्त निहित है। शब्दों का अर्थ वक्ता पर निर्धारित है। आचार्य ही जब अपने आपको यह उल्लेखित कर रहे हैं कि वे ज्ञानी नहीं हैं, दुर्मतिवाले हैं-यह छद्मस्थ की

अपेक्षा से है। लेकिन हम लोग तर्क बहुत करते हैं। तर्क ही नहीं, कुतर्क करते हैं, वे भी ऐसे जो आगम से असंतुलित होते हैं। अन्त में उपदेश-वचन कि हम दुर्मतिवाले हैं, काल कम है, श्रुतका पार नहीं है, उसी में से वही सीख लेना चाहिए जिसके माध्यम से हमारा जन्म-मृत्यु का जो रोग है, वह प्रक्षालित किया जा सके। उसी में से वही सीख लेना चाहिए जिसके माध्यम से हमारा जन्म-मृत्यु का जो रोग है, वह प्रक्षालित किया जा सके। ये पंक्तियाँ कितनी मौलिक हैं! यही भाव कुन्दकुन्दाचार्य ने भी 'नियमसार' के अन्त में दिया था- 'नाना जीवा नाना कम्मा' कहते हुए। इसलिए वचन-विवाद तीन काल में भी नहीं कीजिये। अनेकमत हैं, अनेक प्रकार के चिन्तन हैं, अनेक प्रकार की विचार प्रणालियाँ हैं, अनेक प्रकार के जीव हैं, अनेक प्रकार की उपलब्धियाँ हैं, इसलिए स्वमत और परमत से, स्वचिंतन और परचिंतन से किसी प्रकार से विवाद करने का प्रयास मत कीजिए, क्योंकि हम छद्मस्थ हैं। छद्मस्थ के साथ हमारे पास कोई विशेष ज्ञान नहीं है। इसके साथ हमारा प्रदर्शन है नहीं। हमारा दर्शन का कार्य है। किस-किस को समझाओगे, क्या वाद-विवाद के माध्यम से समझाना होता है? समझाने का अधिकार हमारे पास नहीं है। आचार्य कहते हैं कि तुम्हारे पास ज्ञान ही नहीं है, तो क्या समझा सकोगे? इसलिए तीर्थंकर आ जाते हैं। लेकिन जब तक तीर्थंकर-प्रकृति का उदय नहीं आता, तब तक वे बोलते ही नहीं। कोई पागल कह दे, तो हूँ, कोई अज्ञानी कह दे, तो हूँ। सब कुछ मंजूर है। अनेकान्त के बारे में हमारे आचार्यों ने इतने उदाहरण दिये हैं, मैं कह नहीं सकता। उनकी उदारता का वर्णन करने के लिए वचन नहीं है। दर्शन हमारे लिए कल्याणकारी है, इसको मत भूलिये। प्रदर्शन में न तो आर्थिक समस्या देखी जाती है, न कोई हिंसा, अत्याचार-अनाचार देखा जाता है। प्रदर्शन के पीछे सब लुप्त हो जाता है।

चुनाव करने वाले आप हैं (ऐज यू लाइक), अनन्त काल से चुनाव आपने अपनी रुचि से यही किया। प्रदर्शन आपको बहुत अच्छा लगता रहा, किन्तु इतना ध्यान रखिए कि सारा प्रदर्शनमय जीवन निरर्थक है। महावीर भगवान् का सिद्धांत है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है। आप जिस प्रकार चाहते हो, उस प्रकार जी सकते हो (ऐज यु लाइक, यु कैन लिव)। यदि प्रदर्शनमय जीवन जीना चाहते हैं, तो आपके लिए वह ठीक है। यदि आपको दर्शन प्राप्त करना है, यह तो ठीक है ही। अतः महावीर भगवान् को दर्शन से सम्बन्धित कीजिये, प्रदर्शन से नहीं। आप अपने जीवन को भी उस ओर मोड़ने का प्रयास कीजिये, तभी आत्मोन्नति-आत्मोपलब्धि संभव है।

'सागर में विद्यासागर' से साभार

फरवरी-मार्च 2005

मासिक  
जिनभाषित

वर्ष 4, अङ्क 1

सम्पादक  
प्रो. रतनचन्द्र जैन

## कार्यालय

ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा  
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)  
फोन नं. 0755-2424666

## सहयोगी सम्पादक

पं. मूलचन्द्र लुहाडिया,  
(मदनगंज किशनगढ़)  
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा  
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर  
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत  
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ  
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

## शिरोमणि संरक्षक

श्री रतनलाल कंवरलाल पाटनी  
(आर.के. मार्बल )  
किशनगढ़ (राज.)

श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

## प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ  
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,  
आगरा-282002 (उ.प्र.)  
फोन : 0562-2851428, 2852278

## सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक 5,00,000 रु.  
परम संरक्षक 51,000 रु.  
संरक्षक 5,000 रु.  
आजीवन 500 रु.  
वार्षिक 100 रु.  
एक प्रति 10 रु.  
सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

## अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

## ◆ प्रवचन

● दर्शन-प्रदर्शन : आचार्य श्री विद्यासागर जी आव.पृ.2

## ◆ सम्पादकीय

: प्रौढ पाण्डित्य परम्परा का संरक्षण 4

## ◆ लेख

● लोकोत्तरपुरुष महावीर : प्रा. निहालचन्द्र जैन 6

● पूजन विधि : सिद्धा. पं. हीरालाल शास्त्री 8

● धार्मिक समारोहों में हाथियों के  
उपयोग पर श्रीमती मेनका गाँधी  
की चिन्ता 9

● स्त्रीपरीषहजय : पं. रतनलाल कटारिया 10

● जैन और हिन्दू : डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन 13

● जैन मुनि का दिगम्बरत्व : पं. शान्तिराज शास्त्री 16

● पूजा में प्रयुक्त प्रतीक : ब्र. भरत जैन 18

● पूज्य वर्णीजी और स्याद्वाद  
महाविद्यालय : पं. अनिल जैन शास्त्री 21

● संयुक्त परिवार : श्रीमती सुशीला पाटनी 22

◆ जिज्ञासा-समाधान : पं. रतनलाल बैनाड़ा 24

◆ कविताएँ : योगेन्द्र दिवाकर 20

## ◆ ग्रंथ समीक्षा

● तीर्थकरस्तव : प्रो. श्रीमती सुमन जैन 26

● ज्ञान के हिमालय : ब्र. प्रदीप शास्त्री 'पीयूष' 27

## ◆ समाचार

21, 23, 26, 27, 28-32

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

जिनभाषित से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

## प्रौढ़ पाण्डित्य परम्परा का संरक्षण

सर्वप्रथम दिगम्बराचार्य प्रभाचन्द्र (980 से 1065 ई.) को आचार्य और पंडित शब्द से अभिहित किया गया है और इसके बाद आशाघर (1180-1250 ई.) को स्पष्ट रूप से पंडित कहा गया है। भाग्य से दोनों विद्वानों का कार्यक्षेत्र धारानगरी ही रहा है, अतः धारानगरी को दिगम्बर पंडित परम्परा को पल्लवित-पुष्पित करने का श्रेय दिया जाय तो यह अनुचित नहीं होगा। इससे स्पष्ट है कि आचार्य तो साधुवेशी ही होते थे और पंडित गृहस्थ होते थे। सम्भव है कि प्रभाचन्द्र गृहस्थावस्था में पंडित कहे जाते रहे होंगे, बाद में वे आचार्य बने। 13से 15 वीं शताब्दी में भट्टारक परम्परा के कारण पंडित परम्परा का दायित्व भट्टारकों ने ही सम्हाल लिया। परन्तु 15 से 20 वीं शताब्दी अर्थात् उन पाँच सौ वर्षों में पंडितों ने अनेक क्षेत्रों में कार्य किये। उक्त पाँच सौ वर्षों में लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक बीस-पच्चीस विद्वान् ही हुये। इससे स्पष्ट है कि विद्वानों की कमी निरन्तर बनी रही। इस कमी को ध्यान में रखकर बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में कुछ ज्ञानप्रेमी विद्यारसिक श्रेष्ठिजनों का और विद्वानों का ध्यान इस ओर गया। और समाज में महाविद्यालयों, विद्यालयों, पाठशालाओं और छात्रावासों की स्थापना करके संस्कृत विद्या के अध्यापन की प्रणाली को प्रवर्तित किया। और गुरुवर्य पं. गोपालदास जी एवं परमपूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी ने विद्यादान देकर तथा विद्या-अध्ययन के साधन सुलभ कराके जैन समाज में शास्त्रज्ञ विद्वानों की परम्परा का सूत्रपात किया। उसके फलस्वरूप प्रारंभ के कुछ दशकों में समाज में शास्त्रज्ञ विद्वान काफी मात्रा में उपलब्ध हुए। इस उपलब्धि को जैन समाज के गान्धी गुरुवर्य पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी ने 'मेरी जीवन गाथा' (प्र. भाग) पृ. 510 पर लिखा है कि "मुझे पंडितों के समागम से बहुत ही शान्ति मिली और इतना विपुल हर्ष हुआ कि इसकी सीमा नहीं। जिस प्रान्त में सूत्र-पाठ के लिये दस या बीस ग्रामों में कोई एक व्यक्ति मिलता था, आज उन्ही ग्रामों में राजवार्तिक आदि ग्रन्थों के विद्वान पाये जाते हैं। जहाँ गुणस्थानों के नाम जानने वाले कठिनता से पाये जाते थे, आज वहाँ जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड के विद्वान् पाये जाते हैं। जहाँ पर पूजन-पाठ के शुद्ध उच्चारण करने वाले न थे, आज वहाँ पञ्चकल्याणक के कराने वाले विद्वान् पाये जाते हैं। जहाँ पर 'जैनी नास्तिक हैं' यह सुनने को मिलता था, आज वहाँ पर ये शब्द लोगों के सुनने में आते हैं कि 'जैन धर्म ही अहिंसा का प्रतिपादन करने वाला है, और इसके बिना जीव का कल्याण दुर्लभ है।' जहाँ पर जैनी, पर से बाद करने में भयभीत होते थे, आज वहाँ पर जैनियों के बालक पण्डितों से शास्त्रार्थ करने के लिये तैयार हैं। यह सब देखकर ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो आनन्द-सागर में मग्न न हो जावे। आज सभी लोग जैनधर्म का अस्तित्व और गौरव स्वीकार करने लगे हैं। इसका श्रेय इन विद्वानों को ही तो है, साथ ही हमारे दानी महाशयों को भी जिनके द्रव्यदान से यह मण्डली बन गई।"

पू. वर्णी जी के उक्त कथन से स्पष्ट है कि 1800-1900 वीं शताब्दी में प्रौढ़-पाण्डित्य-शैली के विद्वान् तैयार हुए और यह क्रम 20 वीं शताब्दी के सातवें दशक तक जारी रहा और इन्ही विद्वानों के द्वारा चारों अनुयोगों के साहित्य का सम्पादन, अनुवाद तथा अनुसन्धान कार्य पर्याप्त मात्रा में हुआ। परन्तु इसके बाद जो विद्वान् तैयार हुए और हो रहे हैं वे सभी पाश्चात्य शिक्षण विधि में निष्णात हैं। अतः समाज उन्हें प्रौढ़पाण्डित्य का दर्जा नहीं देता है। किन्तु स्थिति इससे भिन्न है। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध के विद्वानों ने प्राच्य पद्धति से अध्ययन करने के साथ युगानुरूप योग्यतायें प्राप्त कर समाजेतर क्षेत्र ग्रहण किया। इससे इनका समाज में जो पूर्ववर्ती विद्वानों का स्थान था वह तो रहा ही, और अन्य विद्वत्समाज में भी प्रतिष्ठा बढ़ी। वे आर्थिकदृष्टि से भी पर्याप्त स्वावलम्बी बने। आज अनेक विश्वविद्यालयों, शासकीय महाविद्यालयों जैन महाविद्यालयों या संस्कृत प्राकृत संस्थानों में यही पीढ़ी सामने है। इस पीढ़ी को जहाँ जैनेतर विद्वत्समाज में अच्छा स्थान प्राप्त हो रहा है, वहीं जैन समाज में सामान्यतः उसकी वह मान्यता नहीं है, जो शास्त्रीय पण्डितों की। इससे इस पीढ़ी में कुछ विशिष्ट मानसिकता के दर्शन होते हैं।

यह मानसिकता इसलिए बनी कि इस पीढ़ी विद्वान शास्त्रीय पीढ़ी के विद्वानों के शिष्य-प्रशिष्य हैं और उन्हें अपने गुरुओं की आर्थिक पीड़ा एवं सामाजिक उपेक्षा का ज्ञान है। इन शास्त्रीय विद्वानों ने जैन समाज की जिन संस्थाओं में सम्पूर्ण जीवन समर्पित किया उन्ही संस्थाओं ने वानप्रस्थावस्था में उनका जो तिरस्कार किया, उसकी पीड़ा ने उनके

शिष्यों के हृदय को गहराई तक स्पर्श किया है। आज इस बेरोजगारी और महार्घता के समय में 'प्रौढ़ पाण्डित्य' का संरक्षण आकाशकुसुमवत् लगता है।

प्रौढ़पाण्डित्य के संरक्षण हेतु निम्नलिखित उपाय आवश्यक हैं, जिनपर पू. मुनिराजों, विद्वानों एवं समाज की अखिल भारतीय स्तर की संस्थाओं तथा जैन पत्रकारों को गम्भीरता से विचार करना चाहिए -

१. समाज द्वारा संस्थापित सम्प्रति जीवित संस्थाओं को गति प्रदान करना।

२. वर्तमान में स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी का शताब्दी वर्ष मनाया जा रहा है। काफी संख्या में इस संस्था ने प्रौढ़ पाण्डित्य समलंकृत विद्वानों को जन्म दिया है। परन्तु वर्तमान में स्थायी प्राचार्य एवं योग्य स्थायी शिक्षकों की व्यवस्था नहीं होने से योग्य विद्वानों का जन्म होना भी असम्भव है।

३. 'गुरु गोपालदास वरैया सिद्धांत संस्कृत महाविद्यालय मुँरैना' से काफी धुरन्धर एवं योग्य विद्वान तैयार हुए हैं और वर्तमान में भी छात्र संख्या अच्छी है, परन्तु वहाँ के दिशा निर्देशकों को चाहिये कि उन छात्रों में विशेष रुचि और प्रतिभा के धनी छात्रों को अतिरिक्त विद्वानों के द्वारा तैयार करें जिससे प्रौढ़ पाण्डित्य के धनी विद्वान तैयार हों।

४. जयपुर स्थित 'श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय' बहुत ही अच्छे ढंग से चल रहा है, जिसमें संस्कृत, प्राकृत विद्या के अध्ययन करने वाले 250 छात्र हैं। ये छात्र उक्त महाविद्यालय में 'श्री दि. जैन श्रमण संस्कृति संस्थान' द्वारा संचालित महाकवि आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास सांगानेर एवं टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर द्वारा संचालित छात्रावास से अध्ययन करने आते हैं। इन संस्थाओं ने कालेज के अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी भाषा का व्युत्पत्तिपरक ज्ञान कराने हेतु विशिष्ट विद्वानों को भी रखा है, जिसके कारण व्युत्पत्ति परक विद्वान भी तैयार हो रहे हैं। वर्तमान में भी यहाँ के छात्रों को ग्रन्थों की मूल पंक्ति से ज्ञान कराया जाता है, जिससे छात्रों को ग्रन्थ कण्ठस्थ एवं पंक्ति से तैयार हो।

५. श्री महावीर दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय सादमल एवं वरुआसागर में संचालित संस्कृत विद्यालय में भी छात्रों की स्थिति सन्तोषजनक है। परन्तु यहाँ पर छात्र प्रारम्भिक कक्षाओं में अध्ययन करते हैं। वस्तुतः इन दो संस्थाओं का विशेष दायित्व बनता है कि मूल जड़ से संस्कृत भाषा का ज्ञान अल्पवय के छात्रों को कराना है। अतः समुचित ढंग से तैयार करायें।

६. आहार एवं सागर में संचालित विद्यालयों में संस्कृत परम्परा एवं सामान्य परम्परा की दोहरी शिक्षा दी जाती है। अतः छात्र को निर्णय करने में कठिनाई होती है कि वह छात्र किस परम्परा का अध्ययन करें।

उक्त विश्लेषण से इतना तय है कि अभी भी संस्कृत-प्राकृत भाषा के ग्रन्थों के पठन-पाठन की व्यवस्था है और कुछ विद्वान् भी तैयार हो रहे हैं। परन्तु प्रश्न है कि जो विद्वान् 'प्रौढ़ पाण्डित्य' परम्परा से तैयार हो रहे हैं या होंगे, वे विद्वान् उस परम्परा का निर्वाह अर्थ के अभाव में कैसे करेंगे? समाज के कर्णधारों, संस्था संचालकों की सोच है कि इस बेरोजगारी के समय में तीन-चार हजार रुपये प्रतिमाह वेतन मिल जाय सो पर्याप्त है परन्तु उक्त महानुभावों को विचार करना चाहिए कि प्रौढ़ पाण्डित्य वही प्राप्त कर सकता है, जिसमें जैन संस्कृति के संरक्षण के भाव के साथ अत्यधिक प्रतिभा हो। जिसका क्षयोपशम कमजोर है, वह 'प्रौढ़ पाण्डित्य' प्राप्त नहीं कर सकता। अतः समाज का कर्तव्य है कि जो विद्वान् 'प्रौढ़ पाण्डित्य' की दृष्टि से शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं, उन्हें न्यूनतम 8000 से 13000 हजार वाला वेतन दिया जाय और समुचित आवासीय व्यवस्था। आज अधिकांश पूज्य मुनिराजों का, विद्वानों का एवं समाज का ध्यान क्रियाकाण्ड एवं अनुष्ठानों पर है, जिसके कारण परम्परागत विद्याध्ययन करने वाले छात्र अनुष्ठानों में रुचि रखते हैं क्योंकि शिक्षणकार्य की अपेक्षा अनुष्ठान कार्यों में अर्थोपलब्धि अच्छी है। इस पर हमें गम्भीरता से विचार करना होगा अन्यथा 'प्रौढ़ पाण्डित्य' देखने की बात तो दूर, सुनने को भी नहीं मिलेगा।

इस समय हमें यदि युगानुरूप चलना है तो एक ओर विशुद्ध परम्परागत विद्या का अध्ययन करनेवाले और दूसरी ओर विशुद्ध परम्परागत विद्या के साथ आधुनिक चिन्तन और अनुसन्धानात्मक दृष्टिकोण वाले दोनों परम्परा के विद्वान् अपेक्षित हैं। वर्तमान युग में जीवित प्राचीन जैन शिक्षण संस्थाओं को किस प्रकार चलाया जाय और किस प्रकार का पाठ्यक्रम हो इसके लिये शिक्षण संस्थाओं के प्राचार्यों, शिक्षकों एवं संचालकों का चिन्तन-सम्मेलन पूज्य आचार्यों एवं मुनिराजों के सान्निध्य में होना चाहिए, जिससे इस दिशा में ठोस प्रगति हो सके। और 'प्रौढ़ पाण्डित्य' के संरक्षण पर भी विचार हो सके।

डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर

# लोकोत्तर पुरुष : महावीर

प्राचार्य निहालचन्द जैन

भगवान् महावीर का 2600वां जन्म कल्याणक महोत्सव, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मनाया जाना है वर्द्धमान महावीर की समसामयिक प्रासंगिकता को रेखांकित कर रहा है। इस प्रकार यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि आज हिंसा, नृशंसता और मानसिक खोखलापन उस समय से, जब महावीर अवतरित हुए थे, 2600 गुना अधिक है।

तब भी मानवीय-मूल्यों का भीषण रूप से हास हो रहा था जब क्रान्ति-दृष्टा वर्द्धमान महावीर ने मानवता के संरक्षण और जीव दया के अनुरक्षण के लिए एकाकी अभियान प्रारंभ किया था।

महावीर ने अहिंसा के मूर्तिमंत लोकोत्तर-पुरुष के रूप में सामाजिक परिष्कार के लिए, अपने तेजोमय दिव्य आलोक में न केवल मनुष्यों और देवताओं को सम्बोधा बल्कि उनकी सर्वव्यापकता तिर्यचों, पशुओं, सिंहों, नेवलों जैसे हजारों जीवधारियों के लिये प्रेरणा का प्रबोध-पुञ्ज बनी।

इस मृण्मय देह के दीये में, आत्मा की ज्योतिशिखा प्रकृति रूप ब्रह्म का अप्रतिम उपहार है जिसका उद्देश्य-सुख के सागर को अपनी आत्मा की इकाई में ही विराटता देना है। इस उद्देश्य को पाने के लिए भगवान् महावीर का पुण्यश्लोक संदेश हमारी नाव है जिस पर आरूढ़ होकर हम संसार-सागर पर उतर कर सुख के लोक को प्राप्त कर सकते हैं।

‘पूजा’ की सम्मोहक भाषा से महावीर खुश हो पायेंगे। वे चाहते थे कि जीवन के मंदिर में कर्म की पूजा की जाए। सम्यक्-कर्म की आराधना की जाए। सम्यक् श्रद्धा और विवेक के साथ संयम के स्वर्ण काल में, अष्टकर्मों के विसर्जन के प्रतीक स्वरूप, द्रव्यों को सजाकर, सम्यक्-कर्म और सम्यक्चारित्र द्वारा ही मनुष्यता को बचाया जा सकता है।

क्या ‘अहिंसा’ की महाज्योति किसी सम्प्रदाय-विशेष की पूंजी है? यदि नहीं तो महावीर भी पूरी मनुष्यता के लिए समर्पित दिव्य महापुरुष माने जायेंगे। वे किसी सम्प्रदाय विशेष के आराध्य-देव कैसे बन सकते हैं?

‘जिन चिरागों से तआस्सुब का धुंआ उठता है।

उन चिरागों को बुझा दो तो उजाले होंगे।’  
सम्प्रदाय के चिरागों से उठता धुंआ, अहिंसा के आलोक को ढंके हुए है।

महावीर की अहिंसा-न कोई नारा है और न ही पंथ। यह तो एक जीवनशैली है, वैचारिक-संघर्ष से ऊपर उठकर सहिष्णुता/सहयोग की भावना का समादर करने वाली जीवनशैली है। स्वामित्व और संग्रह की आकांक्षा से ऊपर उठकर समत्व की सरस-धारा में जीने की शैली है। वस्तु के संग्रह, सत्ता के केन्द्रीयकरण और अपरिमित-भोगाकांक्षा जीवन के लिए ही नहीं, समाज के लिए अभिशाप है। अतः भगवान् महावीर ने वैचारिक संघर्ष का ‘अनेकान्त’ के द्वारा समाधान दिया तथा अनियंत्रित संग्रह से बचने के लिए ‘अपरिग्रह’ का जीवन-दर्शन दिया।

वस्तुतः अहिंसा को एक सिक्का कहें तो उसके एक तल पर अनेकान्त रूपायित है तो दूसरे तल पर अपरिग्रह का आकार है। अहिंसा जीवन-दर्शन में अनेकान्त और अपरिग्रह समाहित हो जाते हैं।

महावीर का धर्म मानवता के सम्मान और पूजा का धर्म है।

महावीर का धर्म जीवन की समग्रता का धर्म है। असल में जो हमें पाना है वह दिशा है ‘Being’ यानी ‘होने की’, हम जो हैं, इससे बदलने की और आत्मा को पाने की। लेकिन हम जो पा रहे हैं दिशा है- ‘Having’ यानी वस्तुओं की।

हमारा अनुभव हमेशा आशा के सामने हार जाता है। अतीत का यह अनुभव हमारे पास है कि परिग्रह या वस्तुएँ सुख का आधार नहीं हैं, न ही बन सकती हैं। लेकिन भविष्य की आशा यही होती है कि ‘कुछ और मिल जाए’। ऐसी तृष्णा का कटोरा हमेशा खाली रहता है। तृष्णा के कटोरे को वस्तुओं से और भोग-सामग्री से भरा नहीं जा सकता, परन्तु उसे भरने की कोशिश निरन्तर चालू है।

भगवान् महावीर ने अणुव्रत और महाव्रत का विधान बताकर तृष्णा से विराम पाने की सम्भावना और समाधान का मार्ग दिखाया।

भगवान् महावीर का चिन्तन जीवन के यथार्थ से सम्पृक्त रहा। अणुव्रत कहता है कि यदि स्वस्थ परिग्रह हो तो



उससे अपरिग्रह का जन्म होता है। लेकिन परिग्रह विकसित हो गया हो और पाने की लालसा पागलपन में बदल गयी हो तो ऐसी विकसितता से चोरी का जन्म होता है। आक्रमण और युद्ध की शुरुआत ऐसे ही पागलपन का परिणाम है।

स्वस्थ परिग्रह आवश्यकता और आवश्यक भोग पर खड़ा है।

अस्वस्थ परिग्रह आकांक्षा पर खड़ा है।

आवश्यकता और आकांक्षा में वैसा ही अन्तर है जैसा पेट और पेट की भूख में। भूखे पेट को भरना आवश्यकता है, परन्तु पेट को भरना आकांक्षा है क्योंकि पेट का आकार जैसे-जैसे वह भरती जाती है और बढ़ता जाता है। तिजोरी या खजाने की पूजा हमें सुख नहीं दे सकती। तिजोरी का सुख है कि वह मानवता के उद्धार के लिए खुली रहे। बंद तिजोरी का सुख-वासना का सुख है, मृगतृष्णा का सुख है।

अतः भगवान् महावीर को जीने का प्रयास हो। महावीर को जानने भर से जीवन का रूपान्तरण नहीं हो सकेगा, क्योंकि जानकारियाँ प्रज्ञा को जन्म नहीं दे सकतीं। महावीर प्रज्ञा से पाये जा सकते हैं। महावीर को उपलब्ध करने का सीधा मतलब है, उनका यशानुगामी बनना।

महावीर का जीवन सत्यान्वेषण और संयम की महासाधना का वसीयतनामा है। उन्होंने 'वीतरागी-विज्ञान' पर बल दिया। अकेला 'वीतरागी' एक दर्शन है, सिद्धांत है जो इष्ट-मंजिल को लक्ष्य करता है, उसके साथ 'विज्ञान' शब्द जुड़ा है। जहाँ विज्ञान शब्द हो वहाँ सिद्धांत के साथ प्रयोग चाहिए। सत्यान्वेषण प्रयोग की भूमिका है। जीवन का

सत्य है कि हम 'वीतरागी' बनें। बहुत बड़ा दर्शन है यह। राग-आसक्ति-सम्मोहन उतना ही पीड़ादायी है जितना द्वेष, मूर्च्छना या विछोह। द्वेष से तो उपन्त होना आसान है लेकिन राग से अलग हो पाना बहुत मुश्किल है। क्रोध और मान-द्वेष रूप कषाय है जिन्हें बुद्धिपूर्वक छोड़ा जा सकता है परन्तु माया और लोभ-राग रूप कषाय है, जिन्हें छोड़ पाना कठिन होता है। 'वीतराग' है इस राग से परे अनासक्त भावों का अन्दर सृजन करना। वीतराग है-गाय का बछड़े को बिना भविष्य की कोई कामना लिए उसे दूध पिलाना। वीतरागी बनना-एक लोकोत्तर स्थिति है और उस वीतराग को पाने की कला है वीतराग विज्ञान। विज्ञान एक Process है एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा हमारी अभिकल्पना यथार्थ बनती है।

महावीर स्वामी ने 'वीतराग' को चरितार्थ किया था पूरी सम्पूर्णता के साथ। बिना वीतराग हुए सर्वज्ञता को नहीं पाया जा सकता और सर्वज्ञ ही मानवता से जुड़ सकता है। अतः भगवान् महावीर मानवता के मसीहा थे। मनुष्य के सुख और दुःख के रेशे-रेशे को जानने वाले थे। उन्होंने केवल जाना ही नहीं उसको जीया भी। ऐसे लोकोत्तर पुरुष का जन्म-कल्याणक इसलिए मना रहे हैं कि वे अमर हो गये हैं। भारतीय संस्कृति में लोकोत्तर पुरुष मरते नहीं हैं अतएव उनका जन्म दिवस कल्याणक के रूप में मनाया जाता है।

जवाहर वाड, बीना (बीना)

## 'जिनभाषित' के सम्बन्ध में तथ्यविषयक घोषणा

प्रकाशन स्थान	:	1/205, प्रोफेसर्स कालोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.)
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
मुद्रक-प्रकाशक	:	रतनलाल बैनाड़ा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	1/205, प्रोफेसर्स कालोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.)
सम्पादक	:	प्रो. रतनचन्द्र जैन
पता	:	ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा, भोपाल-462039 (म.प्र.)
स्वामित्व	:	सर्वोदय जैन विद्यापीठ, 1/205, प्रोफेसर्स कालोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.)

मैं, रतनलाल बैनाड़ा एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

रतनलाल बैनाड़ा, प्रकाशक

जप से ध्यान का माहात्म्य कोटि-गुणित बतलाया गया है। इसका कारण यह है कि जप में कम से कम अन्तर्जल्परूप वचन-व्यापार तो रहता है, परन्तु ध्यान में तो वचन-व्यापार को भी सर्वथा रोक देना पड़ता है और ध्येय वस्तु के स्वरूप-चिन्तन के प्रति ध्याता को एकाग्र चित्त हो जाना पड़ता है। मन में उठने वाले संकल्प-विकल्पों को रोककर चित्त का एकाग्र करना कितना कठिन है, यह ध्यान के विशिष्ट अभ्यासी जन ही जानते हैं। 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध-मोक्षयोः' की उक्ति के अनुसार मन ही मनुष्यों के बन्ध और मोक्ष का प्रधान कारण माना गया है। मन पर काबू पाना अति कठिन कार्य है। यही कारण है कि जप से ध्यान का माहात्म्य कोटि-गुणित अधिक बतलाया गया है।

ध्यान से भी लय का माहात्म्य कोटि-गुणित अधिक बतलाया गया है। इसका कारण यह है कि ध्यान में किसी एक ध्येय का चिन्तन तो चालू रहता है, और उसके कारण आत्म-परिस्पन्द होने से कर्मास्त्रव होता रहता है, पर लय में तो सर्व-विकल्पातीत निर्विकल्प दशा प्रकट होती है, समताभाव जागृत होता है और आत्मा के भीतर परम आह्लादजनित एक अनिवर्चनीय अनुभूति होती है। इस अवस्था में कर्मों का आस्रव रुककर संवर होता है, इस कारण ध्यान से लय का माहात्म्य कोटि-गुणित अल्प प्रतीत होता है। मैं तो कहूँगा संवर और निर्जरा का प्रधान कारण होने से लय का माहात्म्य ध्यान की अपेक्षा असंख्यात-गुणित है और यही कारण है कि परम समाधिरूप इस चिल्लय (चेतन में लय) की दशा में प्रतिक्षण कर्मों की असंख्यातगुणी निर्जरा होती है।

यहाँ पाठक यह बात पूछ सकते हैं कि तत्त्वार्थसूत्र आदि में तो संवर का परम कारण ध्यान ही माना है, यह जप और लय की बला कहाँ से आई ? उन पाठकों को यह जान लेना चाहिए कि शुभ ध्यान के जो धर्म और शुक्लरूप दो भेद किये गये हैं, उनमें से धर्मध्यान के भी अध्यात्म दृष्टि से पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ये चार भेद किये गये हैं। इसमें से आदि के दो भेदों की जप संज्ञा और अन्तिम दो भेदों की ध्यान संज्ञा महर्षियों ने दी है। तथा शुक्ल ध्यान को परम समाधिरूप 'लय' नाम से व्यवहृत किया गया है। ज्ञानार्णव आदि योग-विषयक शास्त्रों में पर-समय-वर्णित योग के अष्टांगों का वर्णन स्याद्वाद के सुमधुर समन्वय के द्वारा इसी रूप में किया गया है।

उपर्युक्त पूजा स्तोत्रादिका जहाँ फल उत्तरोत्तर

अधिकाधिक है, वहाँ उनका समय उत्तरोत्तर हीन-हीन है। उनके उत्तरोत्तर समय की अल्पता होने पर भी फल की महत्ता का कारण उन पाँचों की उत्तरोत्तर पूजा करने वाले व्यक्ति के मन, वचन, कायकी क्रिया अधिक बहिर्मुखी एवं चंचल होती है। हृदय-तल-स्पर्शिता है। पूजा करने वाले से स्तुति करने वाले के मन, वचन, काय की क्रिया स्थिर और अन्तर्मुखी होती है। आगे जप, ध्यान और लय में यह स्थिरता और अन्तर्मुखता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, यहाँ तक कि लय में वे दोनों उस चरम सीमा को पहुँच जाती हैं, जो कि छदमस्थ वीतराग के अधिक से अधिक संभव है।

उपर्युक्त विवेचन से यद्यपि पूजा, स्तोत्रादिकी उत्तरोत्तर महत्ता का स्पष्टीकरण भली भाँति हो जाता है, पर उसे और भी सरल रूप में सर्वसाधारण लोगों को समझाने के लिए यहाँ एक उदाहरण दिया जाता है। जिस प्रकार शारीरिक सन्ताप की शांति और स्वच्छता की प्राप्ति के लिए प्रतिदिन स्नान आवश्यक है, उसी प्रकार मानसिक सन्ताप की शांति और हृदय की स्वच्छता या निर्मलता की प्राप्ति के लिए प्रतिदिन पूजा-पाठ आदि भी आवश्यक जानना चाहिए। स्नान यद्यपि जल से ही किया जाता है, तथापि उसके पाँच प्रकार हैं - (१) कुएँ से किसी पात्र-द्वारा पानी निकालकर, (२) बाल्टी आदि में भरे हुए पानी को लोटे आदि के द्वारा शरीर पर छोड़ कर, (३) नल के नीचे बैठकर, (४) नदी, तालाब आदि में तैरकर और (५) कुँआ, बावड़ी आदि के गहरे पानी में डुबकी लगाकर। पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि कुएँ से पानी निकालकर स्नान करने में श्रम अधिक है और शांति कम पर इसकी अपेक्षा किसी बर्तन में भरे हुए पानी से लौटे द्वारा स्नान करने में शान्ति अधिक प्राप्त होगी और श्रम कम होगा। इस दूसरे प्रकार के स्नान से भी तीसरे प्रकार के स्नान में श्रम और भी कम है और शांति और भी अधिक। इसका कारण यह है कि लौटे से पानी भरने और शरीर पर डालने के मध्य में अन्तर आ जाने से शान्ति का बीच-बीच में अभाव भी अनुभव होता था, पर नल से अजस्र जलधारा शरीर पर पड़ने के कारण स्नान-जनित शान्ति का लगातार अनुभव होता है। इस तीसरे प्रकार के स्नान से भी अधिक शान्ति का अनुभव चौथे प्रकार के स्नान से प्राप्त होता है, इसका तैरकर स्नान करनेवाले सभी अनुभवियों को पता है। पर तैरकर स्नान करने में भी शरीर का कुछ न कुछ भाग जल से बाहर रहने के कारण स्नान-जनित शान्ति का पूरा-पूरा अनुभव नहीं हो पाता।

इस चतुर्थ प्रकार के स्नान से भी अधिक आनन्द और शान्ति की प्राप्ति किसी गहरे जल के भीतर डुबकी लगाने में मिलती है। गहरे पानी में लगाई गई थोड़ी सी देर की डुबकी से मानो शरीर का सारा सन्ताप एकदम निकल जाता है, और डुबकी लगाने वाले का दिल आनन्द से भर जाता है।

उक्त पाँचों प्रकार के स्नानों में जैसे शरीर का सन्ताप उत्तरोत्तर कम और शान्ति का लाभ उत्तरोत्तर अधिक होता जाता है, ठीक इसी प्रकार से पूजा, स्तोत्र आदि के द्वारा भक्त या

आराधक के मानसिक सन्ताप उत्तरोत्तर कम और आत्मिक शान्ति का लाभ उत्तरोत्तर अधिक होता जाता है, ठीक इसी प्रकार से पूजा, स्तोत्र आदि के द्वारा भक्त या आराधक के मानसिक सन्ताप उत्तरोत्तर कम और आत्मिक शान्ति का लाभ उत्तरोत्तर अधिक होता है। स्नान के पाँचों प्रकारों को पूजा-स्तोत्र आदि पाँचों प्रकार के क्रमशः दृष्टान्त समझना चाहिए।

'श्रावकाचार संग्रह, भाग-४ से साभार'

## धार्मिक समारोहों में हाथियों के उपयोग पर श्रीमती मेनका गाँधी की चिन्ता

विश्व में भारतीय और अफ्रीकी हाथियों की दो जातियाँ हैं। भारतीय हाथियों का अस्तित्व तेजी से समाप्त हो रहा है। अनुमानतः 20 हजार से कम हाथियों की संख्या भारत में रह गई है। इसका बहुत बड़ा कारण हाथी का दाँत है। हाथी के दाँतों की मूर्तियाँ और कड़ों के निर्माण के कारण हजारों की संख्या में हाथी मार दिये जाते हैं।

बढ़ते हुए मानवीय आवासों के कारण हाथियों का स्वाभाविक प्राकृतिक आवास समाप्त हो चुका है, अतएव वे गाँवों में आवारा घूमते आते हैं और ग्रामीणों द्वारा जान से मार दिये जाते हैं।

बच्चा-हाथियों को मानव समाज द्वारा चुरा लिया जाता है। उन्हें लट्ठा उठाने, उत्सव, मन्दिर कार्यक्रम, जुलूसों चुनाव प्रचार, प्रदर्शनकारी दौड़, पीठ पर सवारी और चिड़ियाघरों में प्रदर्शन के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। इस काम के लिए उन्हें जंजीरों से बाँधा जाता है, भूखा रखा जाता है, मारा जाता है। भिक्षावृत्ति अधिनियम के अनुसार नगर में प्रदर्शन के लिए किसी भी जानवर का उपयोग करना गैर कानूनी है।

दुर्भाग्य से दिगम्बर जैन समुदाय द्वारा अपने धार्मिक जुलूसों में इनका नियमित रूप से उपयोग किया जाता है। यह कार्य गैर कानूनी ही नहीं, अनैतिक भी है।

जिन हाथियों को जुलूस में ले जाया जाता है उससे उनका भारी शोरगुल और अनियंत्रित भीड़ से गहरा मानसिक उत्पीड़न होता है। भीड़ द्वारा जुलूस में आतिशबाजी, बैण्ड बाजे, ऊँचे स्वर के संगीत से हाथी विचलित भी हो जाते हैं। लेकिन महावत के आतंक के डर से हाथी बताये गये काम को करने के लिए मजबूर हो जाता है। जुलूसों में प्रायः उन्हें भोजन नहीं दिया जाता, ऊबड़-खाबड़ लम्बे रास्तों में उन्हें चलने के लिए मजबूर किया जाता है तथा पानी तक के लिए नहीं पूछा जाता। विषैले पेण्ट्स से उनके मुखमण्डल को सजाया जाता है। अनेक हाथी इन्हीं कारणों से या तो समय से पूर्व मर जाते हैं अथवा पागल हो जाते हैं। हाथियों का मालिक इन घटनाओं को महज व्यवसायिक बात मानता है। वास्तव में सारा दायित्व उन लोगों पर है जो समारोहों के लिए हाथियों को किराये पर लेते हैं।

1960 के पशु अत्याचार निषेध अधिनियम के अनुसार किसी भी जानवर को आतंकित करना गैर कानूनी है। जैन लोग धर्म से अहिंसावादी होते हैं। उनसे यह आशा की जाती है कि धार्मिक जुलूसों में वे हाथियों के प्रति क्रूर रवैया नहीं अपनायेंगे। सच्चाई तो यह है कि जैन धर्म को सादगीवाला धर्म माना जाता है। अब वह भी हिंसा जैसी बुराइयों को पनाह देने वाला हो गया है। जैन समुदाय को हाथी किराये पर लेने की बजाय उनके मालिकों के विरुद्ध एफआईआर दाखिल करना चाहिए। क्या आप दिगम्बर जैन की प्रत्येक इकाई से इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए कह सकते हैं। हाथियों को प्रताड़ित करने की प्रक्रिया जैन समुदाय और उसके आदर्श सिद्धांतों के विरुद्ध है। कृपया इस बारे में सहयोग अवश्य दें।

ह. - मेनका गाँधी

"जैनगजट" 17 फरवरी 2005 से साभार

# स्त्रीपरीषहजय

पं. रतनलाल कटारिया

तत्त्वार्थसूत्र गागर (छोटा-सा ग्रंथ) होते हुए भी श्रुतसागर है। उसके नौवें अध्याय में क्षुधादि बाईस परीषह का निरूपण है, जिनमें आठवां स्त्रीपरीषह बताया है। यह स्त्रीपरीषह चारित्र के मोह के सद्भाव में होता है। सूत्र ११ में चौदहवें गुणस्थान तक भी कुछ परीषहों की विद्यमानता व्यक्त की है। किन्तु तत्त्वतः परीषह-व्यवहार तो छोटे गुणस्थान तक ही संभव है। अगले गुणस्थान ध्यान के होने से उनमें कारणों के सद्भाव की अपेक्षा से व्यवहार किया जाता है। फिर भी उन्हें उपचार से ही समझना चाहिए।

परीषह का सहना मुनियों के लिए ही बताया है या श्रावकादि के लिए भी बताया है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यहाँ प्रमुखता से यह कथन मुनियों के लिए ही है, किन्तु श्रावक के लिए इनका निषेध नहीं है। सभी इनका उपयोग कर सकते हैं, सभी के लिए ये लाभकारी हैं। इसी से रत्नकरण्ड श्रावकाचार की कारिका में स्वामी समन्तभद्र ने सामायिक के वक्त श्रावक के लिए परीषहों के सहने का उपदेश दिया है। वैसे जिस पर पड़ती है वह सब सहता ही है। किन्तु उस वक्त आर्त्त-रौद्र परिणाम का न होना ही सहना है। सदा साम्यभाव का रहना ही परीषहजय है। मुनियों के इसीलिए सदा सामायिक-चरित्र बताया है। जो प्राणी जितने समय जितने अंशों में इसका आश्रय लेता है, वह उतना ही सुखी होता है।

परीषह, उपसर्ग, काय-क्लेशादि तप और दुर्घटना (एक्सीडेण्ट) में परस्पर क्या अन्तर है ? बाह्य कारणादि का ही अन्तर है। आभ्यन्तर की दृष्टि से अंतर नहीं, क्योंकि सहना सभी में है, जो आभ्यन्तरिक है। सहने की दृष्टि से सब समान हैं।

प्राकृतिक आपदाओं को 'परीषह' कहते हैं। चेतन-अचेतन द्वारा परकृत आपदाओं को 'उपसर्ग' कहते हैं। तप स्वयं बुद्धिपूर्वक अंगीकृत किया जाता है। दुर्घटना आकस्मिक या अबुद्धिपूर्वक होती है।

प्रश्न- दुर्भिक्ष को उपसर्ग कहेंगे या परीषह ?

उत्तर - "उपसर्गें दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतिकारे" में दुर्भिक्ष को उपसर्ग से जुदा बताया है। उपसर्ग

में साधु ध्यानावस्थित हो जाता है। किन्तु १२ वर्ष के भीषण दुर्भिक्ष में भद्रबाहु आचार्य अपने संघ सहित दक्षिण में चले गये थे। दुर्भिक्ष परकृत नहीं है। वह तो प्रकृतिजन्य है, उससे क्षुधापिपासादि परीषह होते हैं अतः उसे परीषह में गर्भित करना चाहिए। क्षुधा-पिपासा के भेद में दुर्भिक्ष आता है। अर्थात् क्षुधादि कैसे? दुर्भिक्षजन्य। इसी प्रकार महामारी, प्लेग आदि भी परकृत न होने से उपसर्ग नहीं हैं, वे रोग-परीषह में आते हैं। केशलुंचन, मल-परीषह में आता है।

प्रश्न - वृद्धावस्था (जरा) को किसमें लेंगे ?

उत्तर- रत्नकरण्डश्रावकाचार में जरा को रोग से अलग बताया है, अतः वह परीषह होने पर भी रोग-परीषह से अलग है। वह एक अवस्थाविशेष है। वह प्राकृतिक है परकृत नहीं है, अतः परीषह में लेना चाहिए, उपसर्ग में नहीं।

प्रश्न - वध-परीषह और उपसर्ग में क्या अन्तर है ?

उत्तर- ताड़न-मारण, अंगच्छेदन हो जाने पर उसका सहना 'वधपरीषह' है और किसी के द्वारा ऐसा करने का आभास होते ही ध्यानावस्था में लीन हो जाना 'उपसर्ग' है। उपसर्ग में वध ही नहीं होता, अपने पद-विरुद्ध क्रिया भी परकृत होती है। जैसे - ध्यान में लीन साधु को कोई करुणादि भाव से वस्त्र-रजाई ओढा दे।

प्रश्न - साधु को प्राकृतिक आपदाओं को सहना ही चाहिए या मेटने का प्रयत्न भी करना चाहिए ?

उत्तर- जहाँ तक मेटना संभव हो, वहाँ तक योग्य रीति से मेटने का प्रथम प्रयत्न करना चाहिए। फिर भी न मेटी जा सके, तो तब तक साम्यभाव धरना चाहिए। उपसर्ग का प्रतिवाद नहीं किया जाना चाहिये यह साधु के पद-विरुद्ध है (ध्यानावस्था में श्रावक के भी पद-विरुद्ध है)। उपसर्ग-कर्ता को उसकी मनमानी कर लेने देना चाहिए और स्वयं ध्यानावस्था में लीन हो जाना ही विधेय है।

इतने प्रासंगिक विवरण के बाद अब हम शीर्षक के खास विषय पर आते हैं। इसका नाम 'स्त्री-परीषह' क्यों रखा? आर्यिकादि इसे कैसे सहेंगी? इस दृष्टि से क्या यह अव्यापक नहीं? अगर इसकी जगह 'काम-परीषह' नाम

रखते तो ज्यादा व्यापक और निर्दोष रहता। स्त्री-निंदा की संभावना भी नहीं रहती।

समाधान- शास्त्रों के सब कथन प्रायः मनुष्यों को ही लक्ष्यकर किये गये हैं। उदाहरण के लिए सात व्यसनो को लीजिए। इनमें परस्त्री-रमण और वेश्या-सेवन ये अलग-अलग बताये हैं। स्त्रियों की दृष्टि से 'परस्त्रीरमण' की जगह पर पुरुषरमण व्यसन बन भी जायेगा, किन्तु वेश्यासेवन की जगह उनकी दृष्टि से क्या बनेगा? इसका कोई उत्तर नहीं, क्योंकि वेश्या का कोई पुल्लिंग रूप नहीं। ऐसी हालत में क्या स्त्रियों के छह ही व्यसन होंगे?

वैसे 'स्त्री' शब्द काम का ही प्रतीक है, जैसे सूर्य दिन का और चन्द्रमा रात्रि का प्रतीक है। इसको न समझने से ही विसंवाद होते हैं। जैसे भाव को छोड़कर शब्दों का आग्रह करने वाले "संसार में बिषबेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा" में नारी को विषबेल लिखने पर विसंवाद खड़ा करते हैं, किन्तु यहाँ भी नारी शब्द काम के एवज में ही प्रयुक्त समझना चाहिए।

कुछ आधुनिकाओं ने खीझ कर इसकी जगह ऐसा बना दिया है- "संसार में विष बेल मानव, तजि गयी जोगीश्वरी" किन्तु इससे दि. आम्नाय का ही एक तरह से खात्मा हो गया है। यह उन विदुषियों के ध्यान में नहीं आया दिखता, क्योंकि दिगम्बर आम्नाय में स्त्री की मुक्ति नहीं मानी, पुरुष की ही मानी है जबकि ऐसा करने से स्त्री की मुक्ति का सिद्धांत 'जोगीश्वरी' रूप में स्थापित हो जाता है और पुरुष के लिए मोक्ष का निषेध "विषबेल" रूप में निर्दिष्ट हो जाता है। इस तरह समानाधिकार के चक्कर में दिगम्बर सिद्धान्तों को ही उलट कर स्त्रियों के एकाधिकार की उल्टी गंगा बहायी गयी है। सही बात और सही भाव न समझने से ऐसे ही अनर्थ होते हैं।

प्रश्न - स्त्री को ही काम का प्रतीक क्यों बताया गया? पुरुष को क्यों नहीं?

उत्तर- स्त्रीपर्याय को ही शास्त्रों में निन्द्य पर्याय माना है, पुरुषपर्याय को नहीं। प्रकृति से भी ऐसा ही है। स्त्री स्वभाव से ही अबला है। उसके साथ बलात्कार संभव है, पुरुष के साथ नहीं। स्त्री के प्रतिमास रजस्त्राव होता है। उसके गुह्यांगों में लब्ध्यपर्याप्तक जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। नवमास तक गर्भभार धारण करती है, इसके बाद

एक मास तक जननाशौच से ग्रस्त हो जाती है। ऐसा पुरुषों में नहीं। इसी से स्त्री-पर्याय में अशुद्धता और निन्द्यता दोनों मानी गयी हैं। सूत्रपाहुड गाथा २५ में "इत्थीसु ण पव्वया भणिया" स्त्रियों के प्रव्रज्या-दीक्षा का स्पष्ट निषेध किया गया है। भावसंग्रह में लिखा है :

स्वभावः कुत्सितस्तासां लिंगं चात्यन्तकुत्सितम् ।  
तस्मान्न प्राप्यते साक्षात् द्वेधा संयम-भावना ॥ २४६ ॥

- स्त्रियों का स्वभाव एवं पर्याय अशुद्ध है अतः उनके द्रव्य और भाव संयम अथवा इन्द्रिय और प्राणी-संयम दोनों नहीं होते। इसी से दि. आम्नाय में स्त्री के छठा गुणस्थान और मोक्ष (पंचपरमेष्ठित्व) नहीं माना। यही नहीं, उसके क्षायिक सम्यक्त्व, उत्तम संहनन, त्रैसठ शलाका पद, निःशंक ध्यान, नव ग्रेवेयकादिगमन, चारणादि ऋद्धियाँ, आचार्यपट्ट, यज्ञोपवीतादि संस्कार, द्वादशांग (चौदह पूर्व) का ज्ञान, सर्वावधि और मनः पर्ययज्ञान आदि नहीं होते। सम्यग्दृष्टि मरकर स्त्री-पर्याय में जन्म नहीं लेता। इसमें की बहुत-सी बातें श्वेताम्बर भी मानते हैं ॥

साधना की दृष्टि से आचार्यों ने ही (निन्द्य) कामभाव को स्त्रीपर्याय का प्रतीक माना है। इससे स्त्रियों के साथ अन्याय अर्थात् ज्यादाती और पुरुषों पर कृपादृष्टि की आशंका करना व्यर्थ है। आचार्यों ने जो जैसा है, वैसा ही चित्रित किया है, कोई पक्षपात नहीं किया है। इस पर भी कोई नाराज हो, तो इसका वो क्या करें। श्वेतांबर सम्प्रदाय स्त्री की मुक्ति मानता है, फिर भी उनके यहाँ भी स्त्री को ही काम का प्रतीक माना है, पुरुष को नहीं। श्वेतांबरों के यहाँ भी स्त्रीपरीषह नाम ही है, कामपरीषह या पुरुषपरीषह नाम नहीं।

स्त्री-परीषह का मतलब है स्त्री-विषयक बाधा अर्थात् स्त्री के माध्यम से होने वाले कुत्सित विचार। मोक्षपथ के साधक के लिए इसमें क्षुधादि की तरह स्त्री को एक बाधा रूप में माना है।

शास्त्रों में स्त्रियाँ ४ प्रकार की बतायी हैं। चेतन- १. देवी, २. मनुष्यनी, ३. तिर्यचनी और ४. अचेतन। काष्ठ-शिलादि में उत्कीर्ण, कागज आदि पर चित्रित, मूर्तिरूप और वर्णनात्मक शब्द-मूर्तिमय। इनके माध्यम से राग या काम-भाव होने पर उन्हें सहना स्त्री-परीषह-जय है। यह सब १८ हजार शील के भेदों में आता है।

कामभावों पर नियंत्रण रखना, उनके साथ नहीं बहना, वैराग्यभावों से चित स्थिर रखना योग्य है। इसी से अपने कर्तव्य कर्म और धर्म-मार्ग की सिद्धि होती है तथा संवरपूर्वक कर्मनिर्जरा होती है। यही यथार्थ स्त्री-परीषह (जय) है।

प्रश्न - जय सीताराम, जय राधेश्याम, उमाशंकर, गोपीकृष्ण में स्त्रीनाम को पहले दिया गया है और उसकी जय बोली गई है अतः वह शब्द पुरुष की अपेक्षा स्त्री की श्रेष्ठता का द्योतक है।

उत्तर- यहाँ न तो स्त्री की जय कही गयी है और न स्त्री नाम को श्रेष्ठता के कारण पहिले दिया गया है। बात कुछ दूसरी ही है। उसका रहस्य इस प्रकार है: जैसे जय सीताराम में सीता के पति राम की ही जय बोली गयी है। यहाँ सीता शब्द राम का विशेषण है, अलग स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं है। राम अनेक हुए हैं - बलराम, परशुराम, जयराम उन सबसे अलग बताने के लिए सीताराम शब्द का प्रयोग किया गया है। अर्थात् सीता के वर = पति राम ही यहाँ इष्ट हैं। इसी से रामलीला में "सियावर रामचन्द्र की जय" बोलते हैं। सीता और राम के बीच में वर या पति शब्द छिपा हुआ है। यह एक ही पुरुष = राम का वाचक है, सीता और राम ऐसे दो का वाचक नहीं। इसी से एकवचन में ही यह सदा प्रयुक्त होता है। अगर दो का होता जो द्विवचन में होता। यह नाम सदा एक पुरुष का ही रहता है कभी किसी स्त्री का नहीं। इसी प्रकार राधेश्याम, उमाशंकर, गोपीकृष्ण नामों को समझना चाहिए।

इसी तरह उमापति, लक्ष्मीकांत, त्रिशलात्मज, देवकीनंदन आदि हैं। इसमें भी पहिले स्त्रीनाम होते हुए भी वह उनका कतई वाची नहीं है। उनका वाची तो एक पुरुष ही है और वही इष्ट है।

प्रश्न - "स्त्रीणां शतानि" (भक्तामरस्तोत्र २२) में बताया है कि सैकड़ों पुत्रों को सैकड़ों स्त्रियाँ जन्म देती हैं,

किन्तु हे प्रभु! तुम जैसे महान् पुत्र को जन्म देने वाली माता एक ही है। ताराओं को उदित करने वाली तो सभी दिशाएँ हैं, किन्तु तेजस्वी सूर्य को उत्पन्न करने वाली एक पूर्व दिशा ही है। इसमें तीर्थकरमाता की श्रेष्ठता व्यक्त की गयी है।

उत्तर- इसमें पुरुषों से स्त्रियों की श्रेष्ठता व्यक्त नहीं की गयी है किन्तु स्त्रियों में तीर्थकर माता की विशिष्टता व्यक्त की है। अन्य स्त्रियों के तो अनेक पुत्र-पुत्रियाँ होती हैं किन्तु तीर्थकर अपनी माता के अकेले एक ही होते हैं। यहाँ श्रेष्ठता और तेजस्विता प्रभु की बतायी है। कवि ने यह स्तोत्र आदिनाथ प्रभु का बनाया है और उन्हीं का इसमें गुणगान किया है, उनकी माता का नहीं। माता को तो प्रशंस्य मातृत्व भी प्रभु के अवतार लेने के बाद ही मिला है, पहले नहीं।

यह सब प्ररूपण किसी निंदा की दृष्टि से नहीं है। किन्तु 'याथातथ्यं विना च विपरीतात्' (बिना किसी विपरीतता के वास्तविक है)। इस विषय में कभी कोई मुमुक्षु किसी भ्रम-भुलावे और चक्कर में न आ जाये, ऐसी सावधानी की दृष्टि से उसे आगाह किया है। वैसे मुमुक्षु या भव्य परिणामी को दूसरों की गलती ढूँढने के बजाय स्वयं को सचेत रहने की सख्त जरूरत है, तभी वह कल्याण मार्ग पर अग्रसर हो सकता है। यही सही और स्वाधीन तरीका है।

जे प्रधान के हरि को पकड़ें,  
पन्नग पकड़ पान से चावें ।  
जिनकी तनक देख भौं बाँकी,  
कोटिन सूर दीनता जापें ।  
ऐसे पुरुष पहाड़ उड़ावन,  
प्रलय पवन त्रिय वेद पयापै ।  
धन्य-धन्य ते साधु साहसी,  
मन सुमेरु जिनका नहिं कापै ॥

वात्सल्य रत्नाकर (तृतीय खण्ड) से साधार.

समसत्तुबंधुवगो समसुहदुक्खो पसंसणिंदसमो ।  
समलोदु कंचणो पुण जीविदमरणे समो समणो ॥

श्रमण वह है जो जिनलिंग धारण करते हुए शत्रु और मित्र, सुख और दुःख, प्रशंसा और निन्दा, मिट्टी और स्वर्ण तथा जीवन और मरण में समभाव रखता है।

प्रवचनसार ३/४१

हिन्दू धर्म की इन बातों में से एक भी बात ऐसी नहीं है जो जैन धर्म में मान्य हो और न जैन धर्म का इस हिन्दू धर्म के उपरोक्त किसी भी भेद-प्रभेद, दर्शन, सम्प्रदाय, उपसम्प्रदाय आदि में समावेश होता है। अतएव हिन्दू धर्म के अनुयायी हिन्दुओं का जैन धर्म के अनुयायी जैनों के साथ उसी प्रकार कोई एकत्व नहीं है जैसा कि बौद्धों, पारसियों, यहूदियों, ईसाईयों, मुसलमानों, सिक्खों आदि के साथ नहीं है, यद्यपि एतद्देशीयता को एवं सामाजिक सम्बन्धों एवं संसर्गों की दृष्टि से उन सबकी अपेक्षा भारतवर्ष के जैन एवं हिन्दू परस्पर में सर्वाधिक निकट हैं। दोनों ही भारत मां के लाल हैं, दोनों के ही सम्बन्ध सर्वाधिक चिरकालीन हैं, इन दोनों में से किसी के भी कभी भी कोई स्वदेश बाह्य (एक्स्ट्रा टेरिटोरियल) स्वार्थ नहीं रहे, जातीय, राष्ट्रीय, राजनैतिक एवं भौगोलिक एकत्व दोनों का सदैव से अटूट रहा है, दोनों ही देश की समस्त सम्पत्ति-विपत्तियों में समान रूप से भागी रहे हैं और उसके हित एवं उत्कर्ष साधन में समान रूप से साधक रहे हैं। कतिपय अपवादों को छोड़कर इन दोनों में परस्पर सौहार्द भी प्रायः बना ही रहा है।

इस वस्तुस्थिति को सभी विषेशज्ञ विद्वानों ने और राजनीतिज्ञों ने भी समझा है और मान्य किया है। प्रो० रामा स्वामी आर्यंगर के शब्दों में जैन धर्म, बौद्ध धर्म अथवा ब्राह्मण धर्म (हिन्दू धर्म) से विसृत तो है ही नहीं, वह भारतवर्ष का सर्वाधिक प्राचीन स्वदेशीय धर्म रहा है, (जैन गजट, भा० १६, पृ० २१६) प्रो० एफ० डबल्यू० टामस के अनुसार 'जैन धर्म ने हिन्दू धर्म के बीच रहते हुए भी प्रारंभ से वर्तमान पर्यन्त अपना पृथक एवं स्वतन्त्र संसार अक्षुण्ण बनाए रखा है।' (लिंगेसी आफ इंडिया, पृ० २१२) 'कल्चरल हेरिटेज आफ इंडिया' सीरीज की प्रथम जिल्द (श्री रामकृष्ण शताब्दी ग्रन्थ) के पृ० १८५-१८८ में भी जैन दर्शन का हिन्दू दर्शन जितना प्राचीन एवं उससे स्वतंत्र होना प्रतिपादित किया है। भारतीय न्यायालयों में भी हिन्दू-जैन प्रश्न की मीमांसा हो चुकी है। मद्रास हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज तथा विधान सभा के सदस्य टी० एन० शेषागिरी अय्यर ने जैन धर्म के वैदिक धर्म जितना प्राचीन होने की संभावना व्यक्त करते हुए यह मत दिया था कि जैन लोग हिन्दू डिसेन्ट्स (हिन्दू धर्म से विरोध के कारण हिन्दुओं में से ही निकले हुए सम्प्रदायी) नहीं हैं और यह कि वह इस बात को पूर्णतया

प्रमाणित कर सकते हैं कि सभी जैनी वैश्य नहीं हैं अपितु उनमें सभी जातियों एवं वर्गों के व्यक्ति हैं। मद्रास हाईकोर्ट के चीफ जज (प्रधान न्यायाधीश) माननीय कुमारस्वामी शास्त्री के अनुसार 'यदि इस प्रश्न का विवेचन किया जाए तो मेरा निर्णय यही होगा कि आधुनिक शोध खोज ने यह प्रमाणित कर दिया है कि जैन लोग हिन्दू डिसेन्ट्स नहीं हैं, बल्कि यह कि जैन धर्म का उदय एवं इतिहास उन स्मृतियों एवं टीका ग्रन्थों से बहुत पूर्व का है जिन्हें हिन्दू न्याय (कानून) एवं व्यवहार का प्रमाणस्रोत मान्य किया जाता है..... वस्तुतः जैन धर्म उन वेदों की प्रमाणिकता को अमान्य करता है जो हिन्दू धर्म की आधारशिला हैं, और उन विविध संस्कारों की उपादेयता को भी, जिन्हें हिन्दू अत्यावश्यक मानते हैं, अस्वीकार करता है।' (आल इंडिया लॉ रिपोर्टर, १९२७, मद्रास २२८) और बम्बई हाईकोर्ट के न्यायाधीश रॉग्नेकर के निर्णयानुसार यह बात सत्य है कि जैन जन वेदों के आसवाक्य होने की बात को अमान्य करते हैं और मृत व्यक्ति की आत्मा की मुक्ति के लिए किए जाने वाले अन्त्येष्टि संस्कारों, पितृतर्पण, श्राद्ध, पिण्डदान आदि से सम्बंधित ब्राह्मणीय सिद्धान्तों का विरोध करते हैं। उनका ऐसा कोई विश्वास नहीं है कि ओरस या दत्तक पुत्र पिता का आत्मिक हित (पितृ-उद्धार आदि) करता है। अन्त्येष्टि के संबंध में भी ब्राह्मणीय हिन्दुओं से वे भिन्न हैं और शवदाह के उपरान्त (हिन्दुओं की भाँति) कोई क्रियाकर्म आदि नहीं करते। यह सत्य है, जैसा कि आधुनिक अनुसंधानों ने सिद्ध कर दिया है, कि इस देश में जैन धर्म ब्राह्मण धर्म के उदय के अथवा उसके हिन्दू धर्म में परिवर्तित होने के बहुत पूर्व से प्रचलित रहा है। यह भी सत्य है कि हिन्दुओं के साथ, जो कि इस देश में बहुसंख्यक रहे हैं, चिरकालीन निकट सम्पर्क के कारण जैनों ने अनेक प्रथाएँ और संस्कार भी जो ब्राह्मण धर्म से संबंधित हैं तथा जिनका हिन्दू लोग कट्टरता से पालन करते हैं, अपना लिए हैं (आल इंडिया लॉ रिपोर्टर, १९३९ बम्बई ३७७), स्व० पं० जबाहरलाल नेहरू ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'डिस्कवरी आफ इंडिया' में लिखा है कि जैन धर्म और बौद्ध धर्म निश्चय से न हिन्दू धर्म हैं और न वैदिक धर्म भी, तथापि उन दोनों का जन्म भारतवर्ष में हुआ और वे भारतीय जीवन, संस्कृति एवं दार्शनिक चिन्तन के

अभिन्न-अविभाज्य अंग रहे हैं । भारतवर्ष का जैन धर्म अथवा बौद्ध धर्म भारतीय विचारधारा एवं सभ्यता की शत-प्रतिशत उपज है, तथापि उनमें से कोई भी हिन्दू नहीं है । अतएव भारतीय संस्कृति को हिन्दू संस्कृति कहना भ्रामक है ।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी, वेदों तथा वैदिक साहित्य में वेदविरोधी ब्राह्मणों या श्रमणों को वेदानुयायियों--ब्राह्मणों आदि से पृथक सूचित किया है । अशोक के शिलालेखों (३री शती ई० पूर्व) में भी श्रमणों और ब्राह्मणों का सुस्पष्ट पृथक-पृथक उल्लेख है । यूनानी लेखकों ने भी ऐसा ही उल्लेख किया और खारवेल के शिलालेख में भी ऐससा ही किया गया । २री शती ई० पूर्व में ब्राह्मण धर्म पुनरूद्धार के नेता पतञ्जलि ने भी महाभाष्य में श्रमणों एवं ब्राह्मणों को दो स्वतंत्र प्रतिस्पर्द्धाओं एवं विरोधी समुदायों के रूप में कथन किया । महाभारत, रामायण, ब्राह्मणीय पुराणों, स्मृतियों आदि से भी यह पार्थक्य स्पष्ट है । ईस्वी सन् के प्रथम सहस्राब्दी में स्वयं भारतीय जनों में इस विषय पर कभी कोई शंका, भ्रम या विवाद ही नहीं हुआ कि जैन एवं ब्राह्मणधर्म एक हैं -- यही लोकविश्वास था कि स्मरणातीत प्राचीन काल से दोनों परम्पराएँ एक दूसरे से स्वतंत्र चली आई हैं । मुसलमानों ने इस देश के निवासियों को जातीय दृष्टि से सामान्यतः हिन्दू कहा, किन्तु शीघ्र ही यह शब्द शैव वैष्णवादि ब्राह्मणधर्मियों के लिए ही प्रायः प्रयुक्त करने लगे क्योंकि उन्होंने यह भी निश्चय कर लिया था कि उनके अतिरिक्त यहाँ एक तो जैन परम्परा है जिसके अनुयायी अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक हैं तथा अनेक बातों में बाह्यतः उक्त हिन्दुओं के ही सदृश भी हैं, वह एक भिन्न एवं स्वतंत्र परम्परा है । मुगलकाल में अकबर के समय से ही यह तथ्य सुस्पष्ट रूप से मान्य भी हुआ । अंग्रेजों ने भी प्रारंभ में, मुसलमानों के अनुकरण से, सभी मुस्लिमतार भारतीयों को हिन्दू समझा किन्तु शीघ्र ही उन्होंने भी कथित हिन्दुओं और जैनों की एक दूसरे से स्वतंत्र संज्ञाएँ स्वीकार कर लीं । सन् १८३१ से ब्रिटिश शासन में भारतीयों की जनगणना लेने का क्रम भी चालू हुआ, सन् १८३१ से तो वह दशाब्दी जनगणना क्रम सुव्यवस्थित रूप से चालू हो गया । इन गणनाओं में १८३१ से १८४१ तक बराबर हिन्दुओं और जैनियों की संख्याएँ पृथक-पृथक सूचित की गईं । १५ अगस्त १९४७ को हमारा देश स्वतन्त्र हुआ और सार्वजनिक नेताओं के नेतृत्व में यहाँ स्वतन्त्र सर्वतन्त्र-प्रजातन्त्र की स्थापना हुई । किन्तु १९४८ में जो जनगणना अधिनियम पास किया गया

उसमें यह नियम रक्खा गया कि जैनों को हिन्दुओं के अन्तर्गत ही परिगणित किया जाय-- एक स्वतन्त्र समुदाय के रूप में पृथक नहीं । इस पर जैन समाज में बड़ी हलचल मची । स्व० आचार्य शान्तिसागर जी ने कानून के विरोध में आमरण अनशन ठान दिया, जैनों के अधिकारियों को स्मृतिपत्र दिए, उनके पास डेपुटेशन भेजे । फलस्वरूप राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री तथा अन्य केन्द्रीय मन्त्रियों ने जैनों को आश्वासन दिये कि उनकी उचित मांग के साथ न्याय किया जाएगा ।

जैनों की मांग थी कि उन्हें सदैव की भांति १९५१ की तथा उसके पश्चात् होने वाली जनगणनाओं में एक स्वतन्त्र धार्मिक समाज के रूप में उसकी पृथक जनसंख्या के साथ परिगणित किया जाय । उनका यह भी कहना था कि वे अपनी इस मांग को वापस लेने के लिए तैयार हैं यदि जनगणना में किसी अन्य सम्प्रदाय या समुदाय की भी पृथक गणना न की जाय और समस्त नागरिकों को मात्र भारतीय रूप में परिगणित किया जाय । (देखिए हिन्दुस्तान टाइम्स ६.२.१९५०)

जैनों का डेपुटेशन अधिकारियों से ५ जनवरी १९५० को मिला । डेपुटेशन के नेता एस० जी० पाटिल थे । इस अवसर पर दिए गये स्मृति-पत्र में हरिजन मन्दिर प्रवेश अधिनियम तथा बम्बई बैगर्स एक्ट को भी जैनों पर न लागू करने की मांग की । अधिकारियों ने जैनों की मांग पर विचार विमर्श किया और अन्त में भारत के प्रधानमंत्री नेहरूजी ने यह आश्वासन दिया कि भारत सरकार जैनों को एक स्वतन्त्र-पृथक धार्मिक समुदाय मानती है और उन्हें यह भय करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि वे हिन्दू समाज के अंग मान लिए जाएँगे यद्यपि वे और हिन्दू अनेक बातों में एक रहे हैं (हि.टा. २-२-१९५०) प्रधानमंत्री के प्रमुख सचिव श्री ए.के. श्री एस.जी. पाटिल के नाम लिखे गये । ३१-१-१९५० के पत्र में जैन बनाम हिन्दू सम्बन्धी सरकार की नीति एवं वैधानिक स्थिति सुस्पष्ट कर दी गई है । शिक्षा मन्त्री मौलाना अबुलकलाम आजाद ने भी श्री पाटिल को लिखे गये अपने पत्र में उक्त आश्वासन की पुष्टि की और आशा व्यक्त की कि आचार्य शान्तिसागर जी महाराज अब अपना अनशन त्याग देंगे । यह भी लिखा कि अपनी स्पष्ट इच्छाओं के विरुद्ध कोई भी समूह किसी अन्य समुदाय में सम्मिलित नहीं किया जाएगा । वही, (६-२-१९५०) लोक सभा में उप प्रधानमंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल ने बलवन्त सिंह मेहता के प्रश्न के उत्तर में सूचित किया कि जनगणना में धर्म शीर्षक के अन्तर्गत हिन्दू और जैन पृथक-पृथक परिगणित



किये जावे (वही, 8-2-1950)

इसी बीच स्व. तनसुखराय ने अखिल भारतीय जैन एसोशिएसन के मंत्री के रूप में उपराक्त मेमोरेण्डम के औचित्य पर आपत्ति की (वही, 4-2-1950) और अपने वक्तव्य में उन्होंने इस बात पर बल दिया कि शब्द हिन्दू जातीयता सूचक है, राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टियों से जैन हिन्दुओं से पृथक नहीं हैं किन्तु उनकी अपनी पृथक संस्कृति है।

कुछ लोगों ने जैनों के इस क्वचित आन्तरिक मतभेद का लाभ उठाया आम जैनों का उपहास किया, उन पर लांछन लगाये, उनकी निन्दा और भर्त्सना की कि वे अपने आपको 'हिन्दूइज्म' से पृथक करना चाहते हैं, अल्प-संख्यक करार दिये जाकर राजनैतिक अधिकार लेना चाहते हैं, पृथक विश्व विद्यालय की मांग द्वारा इस धर्मनिरपेक्ष राज्य में अपने धर्म का प्रचार करना चाहते हैं, इत्यादि (ईवनिंग न्यूज 14-3-50 में किन्हीं फर्जी 'राइट एन्गल' साहब का लेख) वीर अर्जुन (11-9-49) आदि में इसके पूर्व भी जैनों को स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करने के विरुद्ध लेख निकाल चुके थे कुछ पत्रों में इसके बाद भी निकले। इसप्रकार के लेख साम्प्रदायिक मनोवृत्ति से प्रेरित होकर लिखे गये थे और बहुसंख्यक वर्ग द्वारा उस जैन विद्वेषी संकीर्ण मनोवृत्ति का परिचय दिया गया था जिसे बीच-बीच में यत्र-तत्र बहुसंख्यकों द्वारा जैनों पर किये गये धार्मिक अत्याचारों का श्रेय है। जिन विद्वानों, विशेषज्ञों, न्यायविदों एवं राजनीतिज्ञों के मत इसी लेख में पहिले प्रगट किये जा चुके हैं वे प्रायः उसी कथित हिन्दू धर्म के अनुयायी थे या हैं, किन्तु वे मनस्वी, निष्पक्ष और न्यायशील हैं -- धर्मान्ध या साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के नहीं। अल्पसंख्यक समुदाय से बहुसंख्यक समुदाय वैसे ही भय रहता है जो बहुसंख्यकों के सौहार्द एवं सौभाग्य से दूर होता है, संख्या बल द्वारा दबा देने की मनोवृत्ति से नहीं।

इन लेखों का एक असर यह हुआ कि कुछ जैनों ने, जिनमें स्व. ला. तनसुखराय प्रमुख थे, समाचारपत्रों में अनेकों लेखों एवं टिप्पणियों द्वारा कथित हिन्दुओं के इस भ्रम और आशंका को कि जैन हिन्दुओं से पृथक हैं का निवारण करने का भरसक प्रयत्न किया। इसकी शायद वैसी और उतनी आवश्यकता नहीं थी। 1954 में जब हरिजन मन्दिर-प्रवेश आन्दोलन ने उग्ररूप धारण किया तब भी जैनों में दो पक्ष से दिख पड़े और उस समय भी ला. तनसुखराय ने यही प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया कि जैन हिन्दुओं से पृथक नहीं हैं। सन् 1949-50 से 1954-55 तक के विभिन्न समाचारपत्रों में

इन विषयों से सम्बन्धित समाचारों, टिप्पणियों आदि की कटिंग्स वह एकत्रित करके छोड़ गये हैं। उनके अवलोकन से यही लगता है कि ला. तनसुखरायजी को यह आशंका और भय था कि कहीं धर्म और संस्कृति संरक्षण के मोह के कारण जैनों ने स्वातन्त्र संग्राम में जो धन-जन की प्रभूति आहूति दी है-- अपनी संख्या के अनुपात से कहीं अधिक और देश को एवं राष्ट्र की सर्वतोमुखी उन्नति में जो महत्वपूर्ण योगदान किया है और कर रहे हैं कि उस पर पानी न फिर जाय। और फिर कुछ नेतागिरी का भी नशा होता है। वरना अपनी सत्ता का मोह होना, अपने स्वत्वों, परम्पराओं एवं संस्कृति के संरक्षण में प्रयत्नमान रहना तो कोई अपराध नहीं है -- वह तो सर्वथा उचित एवं श्रेष्ठ कर्तव्य है, केवल यह ध्यान रखना उचित है कि देश और राष्ट्र के महान हितों से कही कोई विरोध न हो और किसी अन्य समुदाय से किसी प्रकार का द्वेष या वैमनस्य न हो, सह अस्तित्व का भाव ही प्रधान हो और समष्टि के बीच व्यष्टि भी निर्विरोध रूप से अपना सम्मानपूर्ण अस्तित्व बनाये रख सके।

अस्तु, इस सम्पूर्ण विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि भले ही मूलतः हिन्दू शब्द विदेशी हो, अर्वाचीन हो, देशपरक एवं जातीयता सूचक हो, उसका रूढ़ अर्थ, जो अनेक कारणों लोक प्रचलित हो गया है, एक धर्मपरम्परा विशेष के अनुयायी ही हैं और अनका धर्म हिन्दूधर्म है। हिन्दू और भारतीय -- दोनों शब्द पर्यायवाची नहीं हैं -- कम से कम भारत के भीतर नहीं हैं, भारत के बाहर तो भारतीय मुसलमानों को भी कभी-कभी हिन्दू कहा गया है। जिस प्रकार भारत के बौद्ध, सक्खि, पारसी, ईसाई, मुसलमान, यहूदी, ब्रह्मसमाजी आदि भारतीय तो हैं किन्तु हिन्दू नहीं, उसी प्रकार जैन भी भारतीय तो हैं, बल्कि जितना भी पूर्णतया कोई अन्य समुदाय किसी भी दृष्टि से भारतीय हो सकता है उससे कुछ अधिक हैं, तथापि वे जिन अर्थों में आज हिन्दू शब्द रूढ़ हो गया है उन अर्थों में हिन्दू नहीं हैं। शब्द का जो रूढ़ और प्रचलित अर्थ होता है वही मान्य किया जाता है--किसी समय 'पाखण्ड' शब्द का अर्थ 'धर्म' होता था, किन्तु आज ढोंग, झूठ और फरेब होता है, अतः यदि आज किसी धर्म को पाखण्ड कह दिया जाय तो भारी उत्पात हो जाय। इस प्रकार के अन्य अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

हिन्दू और जैन शब्दों के भी जो अर्थ लोक प्रचलित हैं जनसाधारण द्वारा समझे जाते हैं, उन्हीं की दृष्टि से इस समस्या पर विचार किया जाना उचित है।

'तन सुखराय स्मृति ग्रन्थ' से साभार

## जैन-मुनि का दिगम्बरत्व

पं. शान्तिराज जी 'शास्त्री'  
आस्थान महाविद्वान् मैसूर

जैनियों में मुख्य सम्प्रदाय दो हैं- दिगम्बर और श्वेताम्बर। स्थानकवासी जैनसम्प्रदाय श्वेताम्बर जैन-सम्प्रदाय में अन्तर्भूत है। दिगम्बर देव के और दिगम्बर मुनियों के जो उपासक हैं वे दिगम्बर जैन कहलाते हैं और श्वेत-वस्त्र धारक मुनियों के उपासक श्वेताम्बर जैन कहलाते हैं।

जैन-शब्द अर्थ "सास्य देवता" इस सूत्र के अनुसार जिसको कर्म शत्रुनाशक जिन है देवता वह जैन कहलाता है। जो जीवादि तत्त्वों को जानता है वह मुनि कहलाता है। दिगम्बरत्व शब्द में जो 'दिक्' शब्द है वह पूर्वादि दिग्वाचक है और 'अम्बर' शब्द वस्त्रवाचक है तथ त्वप्रत्यय भाववाचक है। जिनदेव का उपासक जो मुनि है वह भी जिनदेव के अनुसार दिगम्बर मुद्रा को ही धारण करता है।

व्यवहारों में जो गेरु-वस्त्र धारण करता है वह गुरु, मुनि, तपस्वी, योगी, सन्यासी इत्यादि शब्दों में पुकारा जाता है, किन्तु तात्त्विक दृष्टि से विचार किया जाए तो मद्रास थियासफिकल सोसाइटी के सहायक कार्यदर्शी नारायणस्वामी ऐयर B.A., B.L. के "Digambara is the highest stage of saint. Be as naked as Akasha to reach the highest condition" अर्थात् मुनि की दिगम्बरावस्था सर्वोत्कृष्ट है। यह विषय स्वसमय परसमय सिद्धान्तों से और दृष्टान्तों से भलीभांति समर्थित होता है।

शास्त्रविधि है कि दिगम्बर मुनि अट्टाईस मूल गुणों को पालन करें, वे गुण अधोलिखित प्रकार हैं:-

१. अहिंसा महाव्रत, २. सत्यमहाव्रत, ३. अचौर्य महाव्रत, ४. ब्रह्मचर्य महाव्रत, ५. परिग्रह त्यागमहाव्रत, ६. ईर्यासमिति, ७. भाषा समिति, ८. एषणा (आहार) समिति, ९. आदान निक्षेपण समिति, १०. व्युत्सर्ग समिति, ११. स्पर्शनेन्द्रिय निग्रह, १२. रसनेन्द्रियनिग्रह, १३. घ्राणेन्द्रियनिग्रह, १४. चक्षुरिन्द्रियनिग्रह, १५. श्रोत्रेन्द्रियनिग्रह, १६. सामायिक, १७. स्तवन, १८. वन्दना, १९. प्रतिक्रमण, २०. प्रत्याख्यान, २१. कायोत्सर्ग, २२. केशलोच, २३. भूशयन, २४. अदन्त-धावन, २५. अचेलत्व (दिगम्बरत्व), २६. अस्नान, २७. स्थिति भोजन और २८. एक भोजन।

उपर्युक्त २८ मूलगुणों में प्रत्येक का विस्तृत वर्णन करने से लेख बहुत बढ़ जाएगा। अतः उन गुणों में जिसको

तत्त्वविचार-शून्य-अज्ञलोग निन्दा करते हैं उस अचेलत्वगुण का विवेचन इस लेख में किया जाता है।

सर्वसङ्ग परित्यागी शरीरममकारहीन और ज्ञान ध्यान तपोनिरत दिगम्बर मुनि विचार करता है कि जिस प्रकार कोश में खड्ग तथा छिलके से माषादि धान्य जुदा है उसी प्रकार आत्मा शरीर से भिन्न है और जड़ शरीर का असाधारण लक्षण रस गन्ध स्पर्श है तथा आत्मा का असाधारण लक्षण ज्ञानदर्शनात्मक चेतना है। इस प्रकार का चिन्तन को भेद-विज्ञान कहते हैं। आत्मा तीन प्रकार की है- बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। इनमें भावलिङ्गी दिगम्बर मुनि अन्तरात्मा-भेदविज्ञानी हैं। भेदविज्ञान की विचारसरणि को निम्नलिखित श्लोक से जान सकते हैं।

'त्वं शुद्धात्मा शरीरं सकलमलयुतं त्वं सदानन्दमूर्तिः ।  
देहो दुःखैकगेहं त्वमसि सकलवित् कायमज्ञानपुञ्जम्  
त्वं नित्यः श्रीनिवासः क्षणरुचिसदृशाशाश्वतैकाङ्गमङ्गम्  
मागा जीवात्त रागं वपुषि भज भजानन्तसौख्योदयं त्वं ॥'

भावार्थ - हे जीव निश्चयनय से तू शुद्धात्मा है और शरीर सकलमल युक्त है, तू सदा आनन्दमूर्ति है और शरीर दुःख का मुख्य गृह है। तू सर्वज्ञ है और शरीर अज्ञान का पुञ्ज है। तू नित्य तथा बाह्याभ्यन्तर लक्ष्मी निवास स्थान है और शरीर क्षणरुचि (क्षणप्रभा) के समान अनित्यता का मुख्य स्थान है, ऐसे शरीर में प्रीति मत करो, तू अनन्त सौख्य के आविर्भाव का सेवन करो।

ऐसे भेदविज्ञानी साधु-मुनि तपस्वी प्राणिपीडाहेतु भूत परिग्रह का लेश भी अपने में न रहे इस उद्देश्य से सर्व परिग्रहों को त्याग करके दिगम्बर तपस्वी होता है। उस साधु मुनि का लक्षण अधोलिखित श्लोक में उल्लिखित है :-

देहे निर्ममता गुरौ विनयता नित्यं श्रुताभ्यासता ।  
चारित्र्योज्ज्वलता महोपशमता संसारनिर्वेगता ॥  
अन्तर्बाह्य परिग्रह त्यजनता धर्मज्ञता साधुता ।  
साधो! साधुजनस्य लक्षणमिदं संसारविच्छेदकम् ॥

भावार्थ - हे साधु शरीर में ममकाररहित ज्ञानतपोवृद्ध गुरुजन में विनयपरता, सदा शास्त्राभ्यासपरता, उत्कृष्टाचारपरता, महोपशमता, संसारविरक्तता: क्रोधहङ्कारादि अन्तरङ्ग परिग्रहत्याग और धनधान्यादि बाह्य परिग्रहत्याग, धर्मज्ञत्व

और साधुत्व ये सब साधुजन का भव विनाशक लक्षण है।

उपर्युक्त श्लोक में 'गुरु' शब्द आया है, गुरुशब्द का वाच्य धर्मगुरु, दीक्षागुरु, विद्यागुरु, मातापितादि अनेक हैं किन्तु प्रकृति सन्दर्भ में धर्मगुरु विवक्षित हैं। उस गुरु का लक्षण सूक्तिमुक्तावलिग्रंथ के अधोलिखित श्लोक में उल्लिखित है -

अवद्यमुक्ते पथि यः प्रवर्तते प्रवर्तयत्यन्यजनं च निस्पृहः ।  
स एव सेव्यः स्वहितैषिणा गुरुः स्वयं तंस्तारयितुं क्षमः परम्॥

भावार्थ - निर्दुष्ट (मोक्ष) मार्ग में स्वयं चलनेवाला, निस्पृह होकर अन्यजनों को भी उस मार्ग में चलानेवाला, भव समुद्र का पार करनेवाला और दूसरों को पार कराने में समर्थ ऐसा जो गुरु है वह आत्माहितैषी को पूज्य है।

रात्रि के समय निर्जन प्रदेश में योगारूढ़ जो योगी है उसको देखकरके एक मित्र अपने मित्र से पूछता है कि "इसको भय क्यों नहीं है" तब वह जवाब देता है कि-

"धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी ।

सत्यं सूनुरयं दया च भगिनी भ्राता मनस्संयमः ॥

शय्या भूमितलं दिशोपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनं ।

एते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्मान्द्रयं योगिनः ॥"

भावार्थ - जिस योगी का धैर्य ही पिता है, क्षमा ही जननी है, शान्ति ही पत्नी है, सत्य ही पुत्र है, दया ही भगिनी है, मनस्संयम ही सहोदर है, भूतल ही शय्या है, दिशायें ही वस्त्र है, ज्ञानामृत ही भोजन है ऐसे कुटुम्बवाले योगी को भय किससे? मित्र कहो।

अधोलिखित दृष्टान्तों से भी व्यक्त होता है कि निर्विकारी जातरूपधारी और मुमुक्षु जो परम तपस्वी हैं उसकी दिगम्बर मुद्रा सर्वोत्कृष्ट तथा पूज्य है।

ऋक्संहिता में उल्लेख है कि "मुनयो वातवसनाः" यहाँ पर वात शब्द का अर्थ पवन और वसन शब्द का अर्थ वस्त्र है अर्थात् वातवसन शब्द का अर्थ दिगम्बर मुनि है।

नारद परिव्राजकोपनिषत् में कहा गया है "आशा-निवृत्तो भूत्वा आशाम्बरधरो भूत्वा" यहाँ पर "आशाम्बर" शब्द का अर्थ "दिगम्बर" है।

मैत्रेयोपनिषत् अध्याय ३ कारिका १६ में कहा गया है कि "देशकालविमुक्तोऽस्मि दिगम्बरमुखेऽस्महं" इसका भाव यह है कि मैं देशकाल नियम का त्यागी और दिगम्बरावस्था के मुख को अनुभव करने वाला हूँ। इससे दिगम्बरावस्था वैश्विय स्पष्ट होता है। योगवासिष्ठ में कहा है कि -

नाहं रामो न मे वाञ्छा भावेषु न च मे मनः ।

शान्तिमास्थातुमिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा ॥

भावार्थ - मैं राम नहीं हूँ, मुझे इच्छा नहीं है, भोगोपभोग सामग्रियों में मेरा चित्त आसक्त नहीं है, मैं मेरी आत्मा में ही, जिनदेव की भांति, शान्तिस्थापना करना चाहता हूँ। जिनदेव दिगम्बर रहते हैं, उन जिनदेव की भांति रामचन्द्र भी स्वात्मा में शांति स्थापना करने को चाहते हैं, इससे सिद्ध होता है कि दिगम्बर-जिनमुद्रा सर्वोत्कृष्ट तथा पूज्य है।

दत्तात्रेय सहस्रनामस्थित अधोलिखित श्लोक से मालूम पड़ता है कि दत्तात्रेय दिगम्बर-योगी थे।

"दत्तात्रेयो महायोगी योगीशश्चामरप्रभुः ।

मुनिर्दिगम्बरो बालो मायामुक्तो दयापरः ॥"

भावार्थ - दत्तात्रेय महायोगी, योगीश्वर, अमरनायक, मुनि दिगम्बर, बाल मायारहित और दयापर थे। महाकवि भर्तृहरि ने वैराग्य-शतक में कहा है कि-

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ।

कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः ॥

भावार्थ - हे शम्भो! मैं अकेला, इच्छारहित, शान्त, पाणिपात्र, दिगम्बर और कर्म निर्मूलन करने में समर्थ कब होऊँगा? इस उक्ति से ज्ञात होता है कि दिगम्बरावस्था सर्वोत्कृष्ट तथा परमपवित्र है।

यह बात प्रसिद्ध है कि भागवतकर्ता शुकमुनि और महादेव दिगम्बर रहते थे। उपर्युक्त इन सब उदाहरणों से भी सुस्पष्ट विदित होता है कि परम तपस्वी की दिगम्बर मुद्रा सर्वोत्कृष्ट और पूज्य है, अतः जानना चाहिये कि जो परम वीतरागी जातरूपधारी निर्विकारी और परमशान्त दिगम्बर महर्षि हैं उनकी निन्दा करना अश्रेयस्कर है और उनकी भक्ति करना श्रेयस्कर है। "कुतः श्रेयोऽतिचर्चिनाम्?"

'हितेच्छु' वीर सं. २४७३ से साधार

## जरूर सुनें

सन्त शिरोमणि आचार्यरत्न श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के आध्यात्मिक एवं सारगर्भित प्रवचनों का प्रसारण 'साधना चैनल' पर प्रतिदिन रात्रि 9.30 से 10.00 बजे तक किया जा रहा है, अवश्य सुनें।

नोट : यदि आपके शहर में 'साधना चैनल' न आता हो तो कृपया मोबाइल नं. 09312214382 पर अवश्य सूचित करें।

# पूजा में प्रयुक्त प्रतीक : एक विश्लेषण

ब्र. भरत जैन, शोध छात्र

प्रतीकों का प्रयोग हमारे दैनिक व्यवहारों में होता है। अपने मौलिक अर्थ के प्रतीक किसी व्यक्ति, विषय, घटना, सन्दर्भ या किसी क्रिया विशेष की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। भाषाशास्त्र के अनुसार प्रतीक भाषा का मौलिक एवं तात्त्विक आधार चिन्ह हैं, जिसमें किसी अभीष्ट अर्थ में निहित विचार, उद्देश्य और इच्छा की अभिव्यक्ति होती है। प्रतीकार्थ को पृथक् कर देने पर साधनाओं में प्रयुक्त शब्दों का मूल्य नगण्य रह जाता है। निःसंदेह मनुष्य अपने सामाजिक एवं धार्मिक व्यवहारों में भाव, विचार और साधनाओं की गम्भीर अभिव्यंजना के हेतु प्रतीकों का प्रयोग करता है। जिस धर्म या सम्प्रदाय में जितना सशक्त आचार व्यवहार और क्रियाकाण्ड होता है, उसमें उतने ही अधिक परिमाण में प्रतीकों का व्यवहार पाया जाता है। तथ्य यह है कि जब सम्प्रदायों के मान्य आचार्य बड़े-बड़े सन्दर्भों और उपकरणों को ढोने में असमर्थता और गुरुता का अनुभव करने लगते हैं, तब वे साधनाओं के महत्व और रहस्यों को प्रतीकों द्वारा व्यक्त करने के लिये बाध्य हो जाते हैं। कहीं-कहीं तो बड़े-बड़े सन्दर्भ ही घिस-पिट कर प्रतीक-रूप ग्रहण कर लेते हैं, इन प्रतीकों का रहस्य अधिक गम्भीर नहीं होता, पर इनमें विशाल अर्थ छिपा रहता है।

पौराणिक आख्यानो के मूलतथ्यों की अभिव्यक्ति अभिधेयात्मक नहीं होती, अतः उन्हें भी प्रतीकों द्वारा अभिव्यञ्जित किया जाता है। सामान्यतः प्रतीकों से अभिधेयार्थ में निहित गूढ़ अर्थ प्राप्त किये जाते हैं और अभिव्यञ्जना के वास्तविक स्तर को प्राप्त किया जाता है। कतिपय विद्वानों का मत है कि मनुष्य भावात्मक वस्तुओं की वास्तविक सत्ता का साक्षात्कार नहीं कर पाता है। अतः वह उन भावात्मक सत्ताओं की जानकारी के लिये प्रतीकों का व्यवहार करता है।

साधारणतः प्रतीकों की उत्पत्ति के कारण उनके विशिष्ट गुण-संक्षिप्तता, स्पष्टता, प्रसादात्मकता, सौन्दर्य-ग्राह्यता, अर्थ-सबलता, व्यञ्जात्मकता एवं रहस्योद्बोधताकता, माने गये हैं। गुण के अनुसार प्रत्येक प्रतीक मनोवैज्ञानिक नियमों, सांस्कृतिक विशेषताओं एवं सिद्धांतों का द्योतक है।

पूजा में प्रयुक्त होने वाले प्रतीकों का विश्लेषण इस प्रकार है-

1. ओम् (ॐ) - बीजाक्षर है, णमोकार मंत्र का

वाचक है। समस्त बीजाक्षरों की उत्पत्ति णमोकार मंत्र से हुई है। सभी बीजाक्षरों में प्रधान ओम् बीज है। यह आत्म वाचक है, मूलभूत है। प्रणव वाचक मंत्र पंच परमेष्ठी होने से ओम् समस्त मंत्रों का सार तत्त्व है।

अरहंता असरीरा आइरिया तह उवञ्जाया मुणिणो।

पढमक्खरणिप्पण्णो ओंकारो पंचपरमेड्डी ॥ 1 ॥

अरहन्त का आदि अक्षर 'अ', अशरीर का (सिद्ध का) अक्षर 'अ', आचार्य का अक्षर 'आ' उपाध्याय का अक्षर 'उ' और मुनियों का (साधुओं का) अक्षर 'म्'।

इस प्रकार अ + अ + आ + उ + म् इन पाँच अक्षरों के दीर्घः। 1-1-77। और इक्यडेरे। 1-1-82 इन शाकटायन व्याकरण सूत्रों के अनुसार सन्धित् करने से पंचपरमेष्ठी वाचक ओम् अथवा (ओं) अक्षर सिद्ध हुआ है।

एकाक्षरी ॐ - का शब्दिक अर्थ-यह तीन शब्दों में मिलकर बना है।

अ (अमृत) + उ (उत्तम) + म (मंगल) अर्थात् जो अमृत है, उत्तम है, मंगल है। जो मनुष्य को अमृतमय बना दे, उत्तमता तक ले जाये, मंगलमय बना दे। वह ॐ ध्वनि है।

ॐ पाँच ज्ञान का भी प्रतीक है - मतिज्ञान (अभिनिबोधिक) - (अ) + श्रुत (आगम) (आ) + अवधिज्ञान + (म) मनःपर्ययज्ञान + केवलज्ञान (उ) - (उत्कृष्ट ज्ञान)

अ + आ + अ + उ + म् = ओम् = ॐ

ॐ तीन लोक का प्रतीक है - अधोलोक (अ) + ऊर्ध्वलोक (उ) + मध्यलोक (म) = ओम् = ॐ

2. ह्रीं - यह बीजाक्षर है। जो सिद्ध/सिद्धि/शुद्धता का वाचक है। यह आत्म बीज है। प्रत्येक मंत्रोच्चार के आरम्भ में ओम् के बाद उच्चरित किया जाता है। जो मंत्र की सार्थकता सिद्ध करता है। इसे सिद्ध चक्र का वाचक भी माना गया है। यह चौबीस तीर्थकरों का प्रतीक बीजाक्षर है।

3. स्वस्तिक - स्वस्तिक का अर्थ कल्याण और क का अर्थ है कारक। इस प्रकार स्वास्तिक का अर्थ हुआ कल्याण कारक। इस स्वस्तिक को शुभ व मंगलकारी माना जाता है।

नरसुर तिर्यङ्गनारकयोनिषु परिभ्रमति जीवलोकोऽम्।

कुशला स्वस्तिक रचनेतीव निदर्शयति धीराणाम्॥

यह जीव मनुष्य, देव, तिर्यच और नरक योनि रूप चातुर्गतिक लोक में भ्रमण करता है। स्वस्तिक की रचना इसी अवस्था को बतलाती है। जिस प्रकार राष्ट्र और विभिन्न दलों के ध्वज अपने-अपने मुख्य उद्देश्यों को अपने चिह्नों द्वारा प्रकट करते हैं। यह स्वस्तिक भी जीव की अवस्थाओं और कर्तव्यों को व्यक्त करता है। इसकी रचना में स्वस्तिक की चारों दिशाओं में जाने वाली रेखाएँ चारों गतियों (जिनमें जीव अपने कर्मों के अनुसार जन्म-मरण करता फिर रहा है) का निर्देश करती हैं।

प्रारम्भ कार्यों में विघ्न निवारण के लिये मंगल किया जाता है। स्वस्तिक के नंदावर्त प्रमुख कार्य किये हैं। भरत जैसे चक्रवर्ती ने भी दिग्विजय के बाद शिला पर अपना नाम लिखने में भी स्वस्तिक का प्रयोग किया है।

**स्वस्तीक्षाकुलकुलव्योमतल प्रालेयदीधितिः।**

**चातुरन्त महीभर्ता भरतः शातमातुरः ॥**

(आदिपुराण 32/146)

तीर्थकरों के शरीर सम्बन्धी 108 लक्षणों में भी स्वस्तिक एक शुभ चिह्न माना गया है।

**तानि श्री वृक्ष शंखाब्ज स्वस्तिकांकुशतोरणम्।**

आदिपुराण 15/37

मंगल, सुख, शान्ति व कल्याण के लिये, चारों मंगलों, उत्तमों, शरणों का आसरा लिया जाता है। गृहस्थाचार सम्बन्धी कार्यों में जो यंत्र पूजा-विधानादि में स्थापित किए जाते हैं, उन यंत्रों विनायक यंत्र, शान्तिविधान यंत्र, शान्ति यंत्र, चत्तारि मंगल पाठ लिखा होता है, इन सबसे यही सिद्ध होता है कि स्वस्तिक इसी पाठ का प्रतिनिधि होना चाहिए।

ये स्वस्तिक चिह्न जैन धर्म का प्रमुख चिह्न है, प्रत्येक शुभ कार्य में इसका अंकन परम आवश्यक और अनिवार्य धर्म का अंग है। जैन ग्रन्थों, जैन मन्दिरों, जैन ध्वजों, जैन पूजा और जैन गृह द्वारों आदि में सहज ही प्रयोग देखा जाता है।

**4. निर्वपामीति** - जल से लेकर फल तक प्रत्येक वस्तु को अर्पित करते समय इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह निर्वपसर्गपूर्वक वप् धातु का वर्तमान काल लटलकार उत्तम पुरुष एकवचन का रूप है। इसका सामान्यतः अर्थ किया जाता है, भेंट करता हूँ, अर्पित करता हूँ, चढ़ाता हूँ, मन, वचन, काय से अष्ट द्रव्य चढ़ाना, समर्पित करना। इसका अभिप्राय है कि पूजन अपने दुष्कर्मों का (जिससे संसार बढ़ता है) समूलक्षय (नष्ट) करने के लिये मन, वचन, काय पूर्वक (सम्पूर्ण रूप से) अष्ट द्रव्य समर्पित करता हूँ।

**5. स्वाहा** - (सु + आ + ह्वे) हे धातु आह्वान करने, प्रार्थना करने, निमन्त्रित करने के अर्थ में हैं। सामान्यतः इष्टदेवता के उद्देश्य से हवि हवन सामग्री अर्पण करने के लिये स्वाहा का प्रयोग होता है। किन्तु यह वैदिकी मान्यता है। जैसे मान्यता में इष्टदेव वीतरागी भगवान् हैं, अतः वे किसी भी परपदार्थ का ग्रहण नहीं करते हैं। तब फिर यहाँ स्वाहा का अर्थ एवं प्रसंगिता क्या है? यह एक विचारणीय विषय है। गवेषणा करने पर यह ज्ञात होता है कि भगवती आराधनाकार ने स्वाहा शब्द को मन्त्र एवं विद्या के मध्य का सीमांकन मानते हुए कहा है कि बीजाक्षर युक्त जिस वाक्य या वाक्यांश के अन्त में स्वाहा का प्रयोग होता है, उसे विद्या कहते हैं, तथा स्वाहा पद का प्रयोग नहीं होने पर वही मन्त्र कहलाता है।

लोक प्रचलित इस शब्द का अर्थ है अपने हाथों से नष्ट करना या समाप्त कर देना। तो यहाँ पर भी आध्यात्मिक सुख-शांति पाने के लिये भौतिक संसाधनों एवं अपने लिये संग्रहित पदार्थों की मूर्च्छा ममत्व भाव को नष्ट करने अथवा समाप्त करने की भावना से स्वाहा का उच्चारण अर्थ संगत प्रतीत होता है अर्थात् मैं जल से फल तक जो वैभव अपने भौतिक सुख संसाधनों रूप में संजोता आया उसके प्रति मेरा ममत्व भाव है, उस ममत्व भाव को मैं भगवान् की साक्षीपूर्वक स्वाहा करने का संकल्प लेता हूँ। क्योंकि परिग्रह की चाह मन में रहते हुए वीतरागी भगवान् का गुणस्तवन मन से संभव ही नहीं है। इसका एक अर्थ यह भी है कि किसी भी द्रव्य को समर्पित किये जाते समय बोला जाने वाला शब्द। यह अर्थ भी उपयुक्त लगता है।

**6. वषट्** - किसी देवता को आहुति देते समय उच्चारण किया जाने वाला शब्द। इसका उपयोग आकर्षण, शिखाबीज, आवाहन के निमित्त होता है।

**7. संवौषट्** - वश्यम्, जीतने का उपाय, जय-उपकरण

**8. आहुति** - (आ + हु + क्तिन्) - आह्वान करना पुण्यकृत्यों के उपलक्ष्य में किये जाने वाले विधान (यज्ञ) आदि में हवन सामग्री हवन कुण्ड में डालना। (आ + ह्वे + क्तिन्) अथवा किसी देवता विशेष को उद्दिष्ट करके दी गई आहुति (हवन सामग्री पूजन सामग्री) देवता विशेष को बिना किसी प्रचार (इच्छा) के दी जाने वाली आहुति।

**9. जयमाला** - पूजा के अन्त में पूजा की विषय-वस्तु को साररूप में प्रस्तुत करने वाला ज्ञेय भाग, जो कि प्रायः प्राकृत, अपभ्रंश या हिन्दी में होता है तथा मूलपूजा

संस्कृत में होती है किन्तु आधुनिक हिन्दी पूजाकाव्यों में मूलपूजा एवं जयमाला दोनों हिन्दी में ही हैं। आराध्य देव के गुणकथन या गुणगान को ही जयमाला कहा गया है। 'गाऊँ गुणमाला अबै, अजरअमर पद देत' में जयमाला के स्थान पर गुणमाला शब्द दिया गया है।

**10. जय शब्द उच्चारण** - प्रायः सभी धार्मिक कार्यों एवं पूज्य पुरुषों के गुण संकीर्तन के समय हम जय शब्द का उच्चारण करते हैं, किन्तु इस शब्द के अभिप्राय से प्रायः जन अपरिचित हैं। सामान्यतः इस शब्द के विजय आदि कई अर्थ व्याकरण की दृष्टि से प्रचलित हैं, किन्तु धार्मिक दृष्टि से इसके तीन अर्थ माने गये हैं- 1. सावधान - सतत् सावधान रहो, 2. संकल्प - संकल्पवान् रहो, 3. अनन्य श्रद्धा भाव रखो।

**11. घंटा** - घंटा मंगल ध्वनि के प्रतीक रूप में बजाया जाता है। घंटे की ध्वनि सुनकर दूर के लोगों को भी मन्दिर जी का स्मरण हो जाता है। घंटा बजाते समय हमारे भाव होने चाहिये कि इस घंटे की मंगल ध्वनि तरंगें वहाँ तक पहुँच जायें, जहाँ हम नहीं पहुँच सकते। ऐसे नन्दीश्वर द्वीप, विदेहक्षेत्र, कैलाश पर्वत आदि ऊर्ध्व-मध्य-अधोलोक में जितने कृत्रिम-आकृत्रिम जिन चैत्यालय विद्यमान हैं, जिन तीर्थ क्षेत्रों की आपने साक्षात् जाकर वंदना की हो,

उनका ध्यान करते हुये, उनको यह मेरी वन्दना-नमस्कार पहुँचे। घंटे को हल्के हाथों से तीन बार ही बजाना चाहिए।

मन्दिर जी में लगा घंटा हमारी विशुद्ध भावनाओं को प्रसारित करने के लिये एक वैज्ञानिक यंत्र है। उसकी मंगल ध्वनि हमारा मानसिक प्रदूषण दूर करती है।

**12. जाप (माला)** - किसी मंत्र को बार-बार स्मरण करना जाप कहलाता है। जाप प्रारम्भ में तो माला के माध्यम से की जाती है फिर अंगुलियों के माध्यम से और जाप में निपुण हो जायें तो बिना अंगुली चलाये मात्र मन में मंत्र का स्मरण शेष रहा जाता है। जाप करने वाली माला में 108 मोती होते हैं एवं बीच में तीन मोतियों का एक मेरुदण्ड होता है। जहाँ से जाप प्रारम्भ होता है। जाप सूत अर्थात् सूती धागे अर्थात् सूती धागे से बने मोतियों की होनी चाहिये। सूत की माला सदा सुख देने वाली होती है। सोना, चांदी, मूंगा, पात, कमल बीज, स्फटिक और मोती की माला हजारों उपवासों का फल देने वाली होती है और अग्नि द्वारा पकी हुई मिट्टी, हड्डी, लकड़ी और रुद्राक्ष की मालाएँ कुछ भी फल देने वाली नहीं हैं अर्थात् वे मालाएँ अयोग्य हैं। ग्रहण करने योग्य नहीं हैं।

क्रमशः .....

जैन अनुशीलन केन्द्र  
राज. विश्वविद्यालय, जयपुर

## यात्रा अधूरी

दिमागी कसरत और  
ख्याली पुलाव के बीच  
मीलों लंबी गुजर गयी  
यात्रा अधूरी  
एक पोले बाँस में  
पगडंडी बनाकर हवा- सी

## बूढ़ी नदी

एक बूढ़ी नदी  
लीक की लाठी लिये  
समंदर में डूब जाती है  
लहरों पर नदी के कुछ  
चिह्न मिलते हैं ।

योगेन्द्र दिवाकर, सतना म.प्र.

## संशोधन

फरवरी-मार्च 2005 के अंक में पेज नं. 41 पर 'आर्यिका श्री मृदुमति जी कृत पुस्तकों का विमोचन' समाचार प्रकाशित हुआ था। वस्तुतः ये पुस्तकें पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज द्वारा रचित हैं। आर्यिका श्री मृदुमति जी की प्रेरणा से ये प्रकाशित हुई हैं।

संपादक

# पूज्य वर्णीजी और श्री स्याद्वाद महाविद्यालय

पं. अनिल जैन शास्त्री 'बण्डा'

भारतीय संस्कृति में प्राचीन युग से ही ज्ञानार्जन हेतु गुरुकुलों की प्रधानता रही है। तथा आद्य युग में भी शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है।

जब संपूर्ण भारत वर्ष में जैन शिक्षा प्राप्त करने के लिए एक भी केन्द्र नहीं था, तब पू. गणेशप्रसाद जी वर्णी ने श्रुत पंचमी सन् १९०५ को एक रुपए के ६४ पोस्ट कार्डों के माध्यम से वाराणसी में ठीक गंगा के किनारे श्री स्याद्वाद महाविद्यालय की स्थापना की। जो आज भी यह भवन प्रत्यक्षरूप से स्थित है। तथा पू. वर्णी जी ने जैन संस्कृति की शिक्षा के उद्देश्य को पूर्ण रूप से साकार किया। श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी की ही नहीं बल्कि भारत वर्ष की एक ऐसी अनोखी संस्था है, जहाँ के संस्थापक स्वयं ही उसी संस्था के प्रथम छात्र थे। श्री स्याद्वाद महाविद्यालय के १०० वर्ष पूर्ण हो रहे हैं तथा शताब्दी समारोह वर्ष चल रहा है। किसी संस्था के १०० वर्ष पूर्ण होना अपने आप में गौरव की बात है।

प.पू. वर्णी जी द्वारा संस्थापित यह संस्था बहुत प्राचीन हो चुकी है। १०० वर्षों में यहाँ से निकले विद्वान संपूर्ण देश में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी जैन संस्कृति की पताका फहरा रहे हैं। पू.आ. विद्यासागर जी के गुरु आचार्य ज्ञानसागरजी (ब्र. भूरामलजी), पं. पत्रालाल जी साहित्याचार्य, पं. दरबारी लाल जी कोठिया, पं. हीरालालजी, पं. कैलाश चंद्र जी इत्यादि अनेक विद्वान तथा सारे देश में फैली विद्वत्ता श्री स्याद्वाद महाविद्यालय की ही देन है।

पू. वर्णी जी ने जैन संस्कृति की रक्षा करने हेतु तथा

जैन शिक्षण के लिए अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया। आज यदि हम पू. वर्णी जी के सिद्धांतों एवं आदर्शगुणों पर अमल करके उनके अनुरूप चलें, तो हम समझेंगे कि हमने भी वर्णी जी को कुछ समर्पित किया है।

जिस प्रकार सूर्य किसी व्यक्तिविशेष से भेदभाव किए बिना सभी को प्रकाश प्रदान करता है, उसी प्रकार वर्णी जी का ज्ञान भी भेदभाव से रहित सूर्य की तरह रहा है, जिसका लाभ देश के लाखों बंधुओं ने प्राप्त किया है।

आधुनिकता की चकाचौंध में जैन संस्कृति व संस्कारों को संरक्षण प्रदान करने के लिए आज पुनः हमें पू. वर्णी जी जैसी महान आत्माओं की अति आवश्यकता है, ताकि हम बढ़ती हुई पश्चिमी सभ्यता से हमारे संस्कृति एवं संस्कारों को खोने से बचा सकें और हमारी भावी पीढ़ी जैन संस्कृति व संस्कारों से विमुख न हो, हम ऐसे कदम उठाएँ।

प्राचीन काल में शिक्षा पूर्ण होने के पश्चात् शिष्य से गुरु दक्षिणा माँगी जाती थी। उदाहरणार्थ गुरु द्रोणाचार्य द्वारा एकलव्य से दाहिने हाथ का अँगूठा माँगा जाना। ऐसे कई उदाहरण पुराणों आगमों में उल्लिखित हैं। किंतु पू. वर्णी जी तो सहज शब्दों में ही कह देते थे कि आप धर्म मार्ग पर अडिग रहो और स्वाध्याय करो, यही मेरी गुरु दक्षिणा है।

ऐसा सहज स्वभाव, इतना गहरा ज्ञान होते हुए भी किञ्चित् मात्र भी मद नहीं होना, यही तो साधना, तप और त्याग है। ऐसी सरलता की प्रतिमूर्ति को हम त्रिकाल प्रणाम वंदन करते हैं।

श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी

- रत्नत्रय वह अमूल्य निधि है जिसकी तुलना संसार की समस्त सम्पदा से भी की जा सकती है।
- रत्नत्रय की कीमत, उसकी क्षमता अद्भुत है बंधुओ! अन्तर्मुहूर्त हुआ नहीं कि यह जीव केवलज्ञान प्राप्त कर निर्वाण भी पा सकता है।
- भव्यत्व की पहचान भले ही सम्यग्दर्शन के साथ हो सकती है, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति रत्नत्रय के साथ ही होगी।
- रत्नत्रय ही हमारी अमूल्य निधि है, इसे बचाना है। इसको लूटने के लिये कर्म चोर सर्वत्र घूम रहे हैं। जागते रहो, सो जाओगे तो तुम्हारी निधि लुट जायेगी।

'सागर बूँद समाय' से साभार

# संयुक्त परिवार

प्रस्तुति : श्रीमति सुशीला पाटनी

जहाँ हर व्यक्ति के दिल में बसता है प्यार,  
जहाँ हर व्यक्ति होता है, एक दूजे के लिये बेकरार,  
जहाँ डाले जाते हैं, धर्म, कला, साहित्य, संस्कृति के संस्कार,  
जहाँ हर दिन लगता है, मानों हो कोई त्यौहार,  
जहाँ कभी नहीं होता औपचारिक व्यवहार,  
जहाँ मिलता है बड़ों को आदर, छोटों को प्यार,  
जहाँ हर व्यक्ति को मिलते हैं समान अधिकार,  
जहाँ न किसी की जीत होती है, न किसी की हार,  
जहाँ संघर्ष या बदले की भावना नहीं, बस रहता है प्यार ही प्यार,

वह पावन स्थल है, जिसे कहा जाता है 'संयुक्त परिवार'।

संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति का प्रमुख आधार स्तम्भ है। संयुक्त परिवार एक ऐसा वट वृक्ष है, जिसकी छाँह तले परिवार का हर सदस्य सुख-चैन की नींद ले सकता है। संयुक्त परिवार एक ऐसा सागर है, जिसमें बहुओं रूपी विभिन्न नदियाँ आकर मिल जाती हैं और एक सूत्र हो जाती हैं। संयुक्त परिवार एक ऐसा उपवन है जिसमें विभिन्न रूप, रंग और गंध वाले पुष्प खिलते हैं, परन्तु घर का मुखिया माली की भाँति उन्हें सजाकर, तराशकर रखता है। 'बंधी मुट्ठी लाख की, खुल गई तो खाक की' के सिद्धांतों पर चलने वाले 'अनेकता में एकता का सूत्र देने वाले', 'आवाज दो हम एक हैं' के नारों को बुलन्द करने वाले संयुक्त परिवार सदियों से भारतीय संस्कृति के पोषक व उन्नायक रहे हैं।

जब हम संयुक्त परिवार के स्वरूप पर नजर डालते हैं तो हम वहाँ पाते हैं कि एक ही छत के नीचे, अपने सीमित-असीमित साधनों के साथ दादाजी-दादीजी परिवार के मुखिया के रूप में अपने परिवार के सदस्यों को वृक्ष की भाँति प्यार की छाँह में रखते हैं। शीतल बयार सा अनुभव देने वाले भाई-बहिन का प्यार स्वतः आँखे नम कर देता है। बहिन या सहेली सा साथ निभाती देवरानी, जेठानी की मित्रता मन को भाव-विभोर कर देती है। जहाँ निश्छल प्रेम होता है, निःस्वार्थ सेवा भाव होता है, निष्कपट आचरण होता है, एक वाक्य में स्वीकारें तो संयुक्त परिवार निःसंदेह एक आदर्श प्रतीक है, आदर्श व्यवस्था है, जो हमारी संस्कृति को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करती है।

परिवार के किसी भी व्यक्ति का दुःख परिवार के सभी सदस्यों का दुःख होना संयुक्त परिवार की ही विशेषता है। त्याग, क्षमा, दया, सामंजस्य, सहानुभूति के सूत्र यदि कहीं एक साथ देखने को मिल सकते हैं तो वह पावन स्थल है- 'संयुक्त परिवार', जिसे हमारे मनीषियों ने 'मन्दिर' कहा है। भक्ति की स्वर लहरियों से गूँजते प्रभाती गान, बच्चों को हाथ पकड़कर मन्दिर जाते बुजुर्गगण, त्यौहारों पर एक साथ मिलकर उत्साह दिखाते परिवार के सदस्य, परियों की धार्मिक कथा सुनाती दादी-नानी, प्यार से खाना खिलाती माँ, प्रेम रस से पूर्ण भोजन बनाती बहुएँ, बड़ों को सम्मान देते हुए बच्चे, यह है संयुक्त परिवार का स्वरूप। तकरार के साथ प्यार, मनुहार के साथ आहार, सत्कार के संस्कार - ये हैं 'संयुक्त परिवार' के आदर्श। तभी तो नववधुएँ अपने बाबुल का घर भूलकर पिया के घर में रम जाती हैं और कहती हैं - 'मैं तो भूल चुकी बाबुल का घर, पिया का घर प्यारा लगे।' जहाँ सास-ससुर में माता-पिता और देवर-ननद में भाई-बहिन की छवि दिखाई देती है। एक सुखी संयुक्त परिवार में सदैव सुख-शांति व प्रसन्नता का वातावरण है। सांझा चूल्हा, सांझा कमाई, सांझा खर्च, सांझा सुख और सांझा दुःख ही 'संयुक्त परिवार' को स्वर्ग से सुन्दर बनाता है।

समय बदला, मनोभावनाएँ बदलीं प्रगतिशीलता की ओर बढ़ते कदमों ने अर्थ के साथ स्वार्थ की भावनाएँ बदलती कीं, भौतिकवाद की पनपती विचारधारा में 'सादा जीवन-उच्च विचार' के स्थान पर 'ऐश्वर्य बिना जीवन बेकार' की भावना को जन्म दिया। 'हम दो-हमारे दो' के नारों ने 'बुजुर्गों को वृद्धाश्रम छोड़ दो' जैसी प्रथाओं को जन्म दिया, आर्थिक स्वतन्त्रता के नाम पर व्यवसाय बदले, नारी स्वतंत्रता के स्थान पर उच्छृंखलता बढ़ी, सम्मान की भावना का स्थान अभिमान ने लिया, त्याग के स्थान पर भोग की लालसा बढ़ी, इन सबका परिणाम यह हुआ कि व्यक्ति एकाकी परिवार में रहने लगा। दूर-सुदूर क्षेत्रों में बसा होने से परिवार के प्रति ममत्व कम होने लगा, 'पत्नी को परमेश्वर मानने' की भावना ने माता-पिता के प्रेम को नजरअंदाज किया, अहं की भावना ने पारिवारिक बिखराव पैदा किया, परिणामतः आदर्श संयुक्त परिवार की परम्परा टूटने लगी।

आज जब भी विभिन्न व्यक्तियों से मिलते हैं, विभिन्न



समुदायों में एकत्र हो गोष्ठी करते हैं, पत्र पत्रिकाओं के पन्ने पलटते हैं, फिल्म या धारावाहिक देखते हैं, सभी में परिवार के वर्तमान स्वरूप से हृदय को बैचन पाते हैं। आज ढूँढ़ने से भी ऐसा बालक नहीं मिलता जो अपने माँ-बाप की इच्छा होने पर कावड़ में बिठाकर तीर्थयात्रा करवा दे, ऐसा बेटा नहीं मिलेगा जो अपने पिता के द्वारा दिये गये वचन को पूरा करने के लिए स्वयं वनवास स्वीकार कर ले, ऐसे भाई कहाँ हैं जो भाई के सुख के लिये वनवास में रहे अथवा राजमहल में रहकर भी वनवासी का सा रहे। ऐसी मर्यादा, ऐसा त्याग, ऐसी सहिष्णुता मात्र संयुक्त परिवारों में ही पनप सकती है।

आज हमें सोचना होगा परिवार के बदलते स्वरूप के कारण हमने क्या खोया है? हमें किन कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है? हमने किन समस्याओं को स्वयं उत्पन्न किया है? वर्तमान परिस्थितियों में यदि हम पुनः संयुक्त परिवारों को अपनायें तो राष्ट्रीय स्तर की समस्याओं का निदान सहज ही हो सकता है।

देश में बढ़ते औद्योगिकीकरण ने पर्यावरण प्रदूषण को जन्म दिया है। बिजली, पानी की समस्या स्थाई हो गई है। मंहगाई के इस युग में आज नारी भी पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर अर्थोपार्जन में लगी है, संस्कारों का पतन देखकर शर्म से हमारा मस्तक झुक जाता है। दुराचार, अनाचार, पापाचार बढ़ते जा रहे हैं। धार्मिक आस्थाएँ लुप्त होती जा रही हैं। कमोबेश देश का ही नागरिक स्वयं के बुन तानों-बानों में उलझता जा रहा है। तब हमारा ध्यान पुनः जाता है संयुक्त परिवार की ओर, जहाँ एक चूल्हा जलता है, पच्चीस लोग एकसाथ खाना खाते हैं, एक टी0 वी0 चलता है, सारा परिवार एक साथ मनोरंजन करता है,

एक जगह पैसा एकत्र होता है व परिवार के सभी सदस्यों की आवश्यकतानुसार उसे व्यय किया जाता है। एक छत के नीचे रहने से प्रेमभाव तो बढ़ता ही है, आवास की समस्या भी हल होती है। बुर्जुगों की समझाईश से युवा पीढ़ी भटकाव से बच सकती है। सुरक्षित वृद्धावस्था परिवार के साथ रहने पर ही संभव है।

संयुक्त परिवार के अलग रहने की चाह में दम्पति अपना घर अलग बसा तो लेते हैं पर फिर उत्पन्न होती है आर्थिक तंगी, वैचारिक मतभेद, बालकों की अवहेलना, दर्शन के स्थान पर अभिमान, निश्चिंतता के स्थान पर असुरक्षा। और पनपता है दंपति के मध्य प्रेम के स्थान पर तकरार, कर्तव्य के स्थान पर अधिकार, प्यार के स्थान पर दुत्कार, संस्कार के स्थान पर दुर्व्यवहार। तो हम पुनः सोचने को मजबूर होते हैं - काश! हमारे साथ माता-पिता होते, काश! हमारे साथ बेटे-बहु होते, जीवन में कांटों के सान पर मधुवन होता।

यह सत्य है कि संयुक्त परिवार में कुछ बुराईयाँ हैं, परन्तु शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से आज भी वे ही व्यक्ति अधिक सफल हैं जिनके सर पर माता-पिता का साया है। वह परिवार अधिक सुखी है जहाँ घर-आँगन में बेटे-बहू का प्यार परवान चढ़ा हो, जहाँ बच्चों की किलकारी से घर की फुलवारी महक रही हो, जहाँ माता-पिता के चरणस्पर्श कर बालक अपनी दिनचर्या प्रारम्भ करता है। हमें मानना होगा कि सुविधा के लिये जुदा होना पड़े तो शर्म की कोई बात नहीं, किन्तु स्वभाव के कारण जुदा होना पड़े तो इससे बड़ा कोई अधर्म नहीं है। अंततः

आर0 के0 मार्बल प्रा0 लि0,  
मदनगंज-किशनगढ़

## भारतवर्षीय श्रमण संस्कृति परीक्षाबोर्ड की परीक्षाएँ

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान द्वारा 'भारतवर्षीय श्रमण संस्कृति परीक्षाबोर्ड' स्थापित किया गया है जिसमें प्रथम सत्र 2004-2005 में 'श्रमण संस्कृति सिद्धांत' प्रवेशिका के प्रथम भाग व द्वितीय भाग की परीक्षाएँ 30 व 31 जनवरी 2005 को आयोजित हुईं, जिसमें मध्यप्रदेश की 18, राजस्थान की 6 एवं महाराष्ट्र पाठशाला के 1800 विद्यार्थियों ने परीक्षा दी। आगामी सत्र 2005-

2006 की परीक्षाएँ दिसम्बर माह में संभावित हैं। जो परीक्षा बोर्ड से अपनी पाठशाला को सम्बद्ध करना चाहते हैं वे अतिशीघ्र पत्र व्यवहार करें।

पं. सुनील जैन 'श्रवण', परीक्षा प्रभारी  
'भारतवर्षीय श्रमण संस्कृति परीक्षा बोर्ड'  
श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान  
सांगानेर, जयपुर (राजस्थान) 303902

## जिज्ञासा-समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

**जिज्ञासा :** क्या भाव स्त्रीवेदी मुनि के आहारक शरीर संभव है ?

**समाधान :** उपरोक्त प्रश्न के समाधान में श्री धवला पु.2 पृष्ठ 513 में इसप्रकार है-

“मणुसिणीणं भण्णमाणे..... आहारआहारमिस्सकाय जोगा णत्थि। किं कारणं। ..... अर्थ - मनुष्यनी स्त्रियों के आलाप कहने पर..... आहारक मिश्रकाययोग नहीं होता। प्रश्न : मनुष्य-स्त्रियों के आहारक काययोग और आहारक मिश्रकाययोग नहीं होने का कारण क्या है। उत्तर : यद्यपि जिनके भावकी अपेक्षा स्त्रीवेद और द्रव्य की अपेक्षा पुरुषवेद होता है वे (भाव स्त्री) जीव भी संयम को प्राप्त होते हैं। किन्तु द्रव्य की अपेक्षा स्त्री वेद वाले जीव संयम को प्राप्त नहीं होते हैं क्योंकि वे सचेल अर्थात् वस्तु सहित होते हैं। फिर भी भाव की अपेक्षा स्त्री वेदी और द्रव्य की अपेक्षा पुरुष वेदी संयमधारी जीवों के आहारक ऋद्धि नहीं होती। किन्तु द्रव्य और भाव इन दोनों ही वेदों की अपेक्षा से पुरुषवेद वाले के आहारक ऋद्धि होती है।”

गोम्मटमार जीवकाण्ड गाथा 715 में इस प्रकार कहा है:

**मणुसिणि पमत्तविरदे आहारदुगं तु णत्थि णियमेण।  
अवगदवेदे मणुसिणि सण्णा भूदगदिमासेज्ज ॥ 715 ॥**

भावार्थ - मनुष्यनी के प्रमत्तविरत गुणस्थान में नियम से आहारकद्विक नहीं है। अपगतवेद अवस्था में ‘मनुष्यनी’ के जो मैथुनसंज्ञा कही है वह भूतगति न्याय की अपेक्षा कही है ॥ 715 ॥

**विशेषार्थ :** जो द्रव्य से पुरुष और भाव से स्त्री हो ऐसी मनुष्यनी में छठे गुणस्थान में आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग का उदय नियम से नहीं होता है। इसीलिए स्त्रीवेदी मनुष्यों के आहारक द्विक तथा वैक्रियकद्विक इन चार को छोड़कर 11 योग कहे गये हैं। गाथा में ‘तु’ शब्द से यह भी लेना चाहिए कि भावस्त्रीवेदी पुरुषों के मनःपर्ययज्ञान के बिना चार ज्ञान तथा परिहार विशुद्धि के बिना 6 संयम संभव हैं।

उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि जिन पुरुषों के स्त्रीभाव वेद का उदय है उनके आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, मनःपर्ययज्ञान तथा परिहार विशुद्धि चारित्र नहीं होते हैं।

**जिज्ञासा -** प्रतीन्द्र और अहमिन्द्रों का वर्णन शास्त्रों में नहीं मिलता। फिर इनको क्यों माना जाता है ?

**समाधान -** प्रतीन्द्र और अहमिन्द्रों का वर्णन आगम में पाया जाता है, कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं:-

तिलोयपणत्ति अधिकार-3 में इस प्रकार कहा है:-  
**इंदा राय-सरिच्छा जुवराय-समा हवंति पडिइंदा।  
पुत्त-णिहा तेत्तीसत्तिदसा सामाणिया कलत्तं वा ॥ 65 ॥**

अर्थ : इन्द्र राजा के समान होते हैं, प्रतीन्द्र युवराज के समान होते हैं, त्रायस्त्रिंश देव पुत्र के समान और सामानिक देव कलत्र के समान होते हैं।

**इंद-समा पडिइंदा तेत्तीस-सुरा हवंति तेत्तीसं ॥ 69 ॥**  
अर्थ : प्रतीन्द्रों की संख्या इन्द्र के बराबर होती है और त्रायस्त्रिंश देव गिनती में 33 होते हैं।

जम्बूद्वीप पणत्ति संगहो में इस प्रकार कहा है :  
**पडिइंदा इंदस्स दु चदुसु वि दिसासु णायव्वा ॥ 305 ॥  
तुल्लवल्लरुवविक्रमपयावजुता हवंति ते सव्वे ॥ 306 ॥**

अर्थ - इन्द्र के प्रतीन्द्र चारों ही दिशाओं में जानने चाहिए ॥ 305 ॥

वे सब तुल्य बल, रूप, विक्रम एवं प्रताप से युक्त होते हैं ॥ 306 ॥

अहमिन्द्र की परिभाषा शास्त्रों में इस प्रकार कही गई है-

श्री अनगार धर्माभूत 1/46 में इसप्रकार कहा है :-  
‘अहमिन्द्रोऽस्मि नेन्द्रोऽन्यो मत्तोऽस्तीत्यात्तकत्थनाः ।  
अहमिन्द्राख्यया ख्यातिं गतास्ते हि सुरोत्तमाः । नासूया परनिन्दा  
वा नात्मश्लाघा न मत्सरः । केवलं सुखसाद्भूता दीव्यन्त्येते  
दिवौकसः । अर्थ - मेरे सिवाय और इन्द्र कौन है। मैं ही तो  
इन्द्र हूँ। इस प्रकार अपने को इन्द्र उद्घोषित करने वाले  
कल्पातीत देव अहमिन्द्र नाम से प्रख्यात हैं। न तो उनमें  
असूया है और न मत्सरता ही है, एवं न ये पर की निन्दा करते  
और न अपनी प्रशंसा ही करते हैं। केवल परम विभूति के  
साथ सुख का अनुभव करते हैं।’

इस प्रकार प्रतीन्द्र एवं अहमिन्द्रों की मान्यता आगम सम्मत स्वीकार करनी चाहिए।

**जिज्ञासा-** मानुषोत्तर के परभाग से लेकर स्वयंप्रभ पर्वत तक जघन्य भोगभूमि कही जाती है। क्या इस जघन्य भोगभूमि में पंचम गुणस्थान संभव है ?

**समाधान -** सामान्य से तो उपरोक्त जघन्य भोगभूमि में प्रथम से लेकर चतुर्थ गुणस्थान तक ही संभव है, परन्तु

विशेष की अपेक्षा पंचम गुणस्थान वर्ती तिर्यच भी वहाँ पाये जा सकते हैं, जैसा कि श्री धवला पु. 4, पृष्ठ 169 में कहा है:

कथं संजदासंजदाणं सेसदीव-समुद्देसु संभवो । न,  
पुव्ववेरियदेवेहि तत्थ घित्ताणं संभवं पडिविरोधाभावा ।

अर्थ : मानुषोत्तर पर्वत से परभागवर्ती व स्वयंप्रभाचल से पूर्वभागवर्ती शेष द्वीप समुद्रों में संयतासंयत जीवों की संभावना कैसे है? उत्तर- नहीं, क्योंकि पूर्व भव के वैरी देवों के द्वारा वहाँ ले जाये गये तिर्यच संयतासंयत जीवों की सम्भावना की अपेक्षा कोई विरोध नहीं है।

प्रश्नकर्ता : कान्ताप्रसाद जी मुजफ्फरनगर।

**जिज्ञासा** - भ. बाहुबली की प्रतिमा मूलनायक के रूप में वेदी में विराजमान कर सकते हैं या नहीं?

**समाधान** - शास्त्रों में केवलियों के दो भेद कहे गये हैं उनमें से एक तीर्थकर केवली हैं और अन्य सामान्य केवली हैं। जब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा की जाती है तब तीर्थकर केवली के तो पाँचों कल्याणकों की क्रिया की जाती है परन्तु बाहुबली भगवान के बिम्ब के उपचार से तीन कल्याणक मात्र ही किये जाते हैं। इस प्रकार तीर्थकर भगवान के बिम्ब को ही जिनालय में मूलनायक के रूप में विराजमान करना ही उचित है। भ. बाहुबली के बिम्ब को अलग वेदी बनाकर उस पर विराजमान करना चाहिए और उस वेदी में अन्य किसी तीर्थकर का बिम्ब विराजमान नहीं करना चाहिए। प्राचीन आचार्यों की परम्परा भी इसी प्रकार है। जैसे श्रवणवेलगोला में यद्यपि भगवान बाहुबलि का जिनबिम्ब अत्यन्त विशाल है फिर भी भ. नेमिनाथ को ही आचार्य नेमिचन्द्रसिद्धांत चक्रवर्ती ने वहाँ का मूलनायक माना है। हमें भी इसी परम्परा का अनुसरण करना चाहिए।

**जिज्ञासा**- क्या सभी केवली समुद्घात करते हैं या कुछ?

**समाधान** - श्री धवला पु.1, पृष्ठ 301-304 पर इस संबंध में बहुत विस्तार से वर्णन है, जिनका सारांश यहाँ दे रहे हैं,

‘प्रश्न - क्या सभी केवली समुद्घात करके ही मुक्ति को प्राप्त होते हैं?’

उत्तर - आ. यतिवृषभ के उपदेशानुसार क्षीणकषाय गुणस्थान के अन्तिम समय में सम्पूर्ण अघातिया कर्मों की स्थिति समान नहीं होने से सभी केवली, समुद्घात करके ही मुक्ति को प्राप्त होते हैं। परन्तु जिन आचार्यों के मतानुसार लोकपूरण समुद्घात करने वाले केवलियों की संख्या का वर्ष पृथक्त्व में 20 का नियम है, उनके मतानुसार कितने ही केवली समुद्घात करते हैं और कितने ही नहीं करते हैं।

प्रश्न - कौन से केवली समुद्घात नहीं करते हैं?

उत्तर - जिनकी संसार व्यक्ति अर्थात् संसार में रहने का काल वेदनीय आदि तीन कर्मों की स्थिति के समान हैं, वे समुद्घात नहीं करते हैं, शेष केवली करते हैं।

प्रश्न - कुछ आचार्यों ने छः माह आयु कर्म के शेष रहने पर जिस जीव को केवलज्ञान उत्पन्न होता है वह समुद्घात करके ही मुक्त होता है, शेष केवली समुद्घात करते भी हैं और नहीं भी करते, ऐसा माना है। इन गाथाओं का उपदेश क्यों नहीं ग्रहण किया जाये?

उत्तर - नहीं, क्योंकि इसप्रकार विकल्प के मानने में कोई कारण नहीं पाया जाता। अतः इस उपदेश का ग्रहण नहीं किया गया है।

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि इस संबंध में आचार्यों के दो मत पाये जाते हैं, जिनका वर्णन उपरोक्त प्रकार से समझ लेना चाहिए।

**जिज्ञासा** - उपशम सम्यक्त्व के साथ मनःपर्ययज्ञान होता है या नहीं?

**समाधान** - प्रथमोपशम सम्यक्त्व के साथ मनःपर्ययज्ञान संभव नहीं है, क्योंकि मिथ्यात्व से आये हुए उपशम सम्यक्त्व के, उपशम सम्यक्त्व के उत्कृष्ट काल से भी, मनःपर्ययज्ञान से पहले आवश्यक संयम काल, बहुत बड़ा होता है। अतः प्रथमोपशम सम्यक्त्व के साथ मनःपर्ययज्ञान संभव नहीं। परन्तु यदि कोई मनःपर्ययज्ञानी मुनि महाराज द्वितीयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर उपशम श्रेणी आरोहण करते हैं, उनके मनःपर्ययज्ञान एवं द्वितीयोपशम सम्यक्त्व एक साथ संभव है। इसका विशेष वर्णन श्री धवला पु.2, पृष्ठ 728-729 पर देखा जा सकता है।

**प्रश्नकर्ता** - सौ. ज्योति लुहाड़े, कोपरगाँव

**जिज्ञासा**- क्षयोपशम सम्यक्त्व अपर्याप्त अवस्था में, किस गति से किस गति में जाने पर पाया जाता है?

**समाधान** - कृतकृत्यवेदी क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव, यदि पूर्व में आयु बंध कर चुका है तो मरण कर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के साथ चारों गति में जा सकता है और उसके अपर्याप्त अवस्था में क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है।

सामान्य क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव यदि नारकी हो तो मनुष्य बनने पर, तिर्यच हो तो देव बनने पर, मनुष्य हो तो देव बनने पर तथा देव हो तो मनुष्य बनने पर अपर्याप्त अवस्था में क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के धारी रहते हैं, अन्य में नहीं।

1/205, प्रोफेसर कॉलोनी,  
आगरा - 282 002

अप्रैल 2005 जिनभाषित 25

# तीर्थकरस्तव एक अनोखी कृति

(रचयिता : मुनिश्री अजितसागर जी)

प्रो. श्रीमती सुमन जैन

इतिहास पुरुषों में तीर्थकरों का इतिहास एक स्वर्णिम इतिहास के रूप में, जैन धर्म है। तीर्थकर जिनका जीवन वैभव और राजसी वातावरण में प्रारंभ होता है, लेकिन वे इस वातावरण में रहकर कभी उस वैभव की विलासता में नहीं अटकते हैं। तीर्थकर तो अपने आपको संसार सागर से पार करके कल्याण का मार्ग प्राप्त करते हैं। जैन दर्शन में ऐसे चौबीस तीर्थकरों का वर्णन किया गया है। युग के आदि में तीर्थकर ऋषभदेव हुए, जिनको ऋषभनाथ और आदिनाथ भी कहा जाता है। जब भोगभूमि का अभाव हुआ और कर्मभूमि का प्रारंभ हुआ उस समय भोलेभाले जीवों के लिये असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन षट्कर्मों को जिन्होंने प्रजाजनों के लिए उपदेश देकर उन्हें कर्म करना सिखलाया, उन्हें स्वतंत्र रूप से जीवन जीने का कर्म बतलाया था, ऐसे ऋषभदेव आदि चौबीस तीर्थकर इस भारत भूमि पर हुए।

जो धर्म तीर्थ का प्रवर्तक होता है, उसका नाम तीर्थकर है। तीर्थ शब्द का अर्थ घाट है। तीर्थकर पुरुष इस भारत की भूमि पर धर्म पुरुष बनकर विचरण करते रहे हैं। उन्होंने भटके-अटके भव्य जीवों के लिए धर्म का मार्ग दिखाकर उनके संसार भ्रमण को मिटाकर कल्याण मार्ग पर लगाया है।

मुनि श्री अजितसागर जी महाराज की यह तीर्थकरस्तव नामक लघुकृति दिखने में छोटी है, पर इस छोटे सी सागर में सागर को समेटे हुए है। इस कृति में चौबीस तीर्थकरों का परिचय सरल, सुन्दर रूप से ज्ञानोदय छन्द में रखा गया है। भक्ति के सागर में डुबकी लगाने वाले भव्य जीवों के लिये प्रकाश शोध संस्थान नई दिल्ली ने इस 'तीर्थकरस्तव' नामक अनोखी कृति का प्रकाशन किया। इस कृति को प्राप्त करके प्रभुभक्ति के रसिक जन इसके माध्यम से भक्ति करके पुण्यार्जन करें।

डिग्री कालेज, सागर(म.प्र.)

## शिक्षा के लिए आर्थिक सहायता

अखिल भारतीय दिगम्बर जैन भाग्योदय परिषद कोलकाता ने अपने उद्देश्यों की एक कड़ी में जरूरतमंद विद्यार्थियों को उनकी पढ़ाई का सपना पूरा करने का निर्णय लिया है।

सर्वविदित है कि वर्तमान में जीवन शैली में हमारा स्तर कितना भी सुधर क्यों न जाए, हम ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में कितनी भी उन्नति क्यों न कर लें, परन्तु आज भी हमारे समाज में न जाने ऐसे कितने प्रतिभावान होनहार छात्र-छात्रायें हैं, जिनकी मुट्ठी में एक सुनहरे भविष्य का सपना तो होता है, लेकिन वह सपना उनको पढ़ाई का उचित साधन उपलब्ध न होने के कारण पूरा नहीं हो पाता है। अधिकांशतः यह सपना आर्थिक सम्पन्नता से अछूते छात्र-छात्राओं का ही टूटता है।

यदि आप कक्षा 10 तक के किसी जैन विद्यार्थी से परिचित हैं जो धनाभाव के कारण शिक्षा हेतु मदद चाहते हैं, निःसंकोच वे निम्नलिखित विवरण एवं आवेदन पत्र के साथ संपर्क करें।

छात्र /छात्रा का फोटो, नाम, उम्र, कक्षा, विद्यालय का नाम, जेरोक्स कॉपी परीक्षाफल की, पिता/माता का नाम, पूरा पता, फोन नं. /मासिक आय/परिवार में सदस्य संख्या। आवेदन पत्र पर विद्यालय के प्रिंसिपल के हस्ताक्षर/रबर स्टाम्प के साथ अवश्य दें।

संपर्क करें- पुष्पा सेठी (ध.प.सी.एल. सेठी), ललिता सेठी (ध.प. संतोष सेठी), चंदा काला (ध.प. सुनील काला), अखिल भारतीय दिगम्बर जैन भाग्योदय परिषद, १०, प्रिंसेप स्ट्रीट, दूसरा माला, कोलकाता- ७०० ०७२ दूरभाष : २२२५ ६८५१/६८५२, २२३६ ७९३७ फैक्स : २२३७ ९०५३

सौ वर्ष पूर्व एक विद्वान पंडित जी ने लिखा था, 'वे गुरु मेरे मन बसैं, बंदों आठों याम।' शायद इसी पंक्ति से प्रतिध्वनित होकर वरिष्ठ साहित्यकार श्री सुरेश 'सरल' गत दो दशकों से अपने हृदयकक्ष में गुरु को विराजित कर, केवल गुरुओं/संतों के 'जीवन चरित' लिख रहे हैं। सन् 1984 में उन्होंने जैन समाज के शिरोमणि-संत आचार्य श्री विद्यासागर जी का जीवन चरित लिखकर साहित्यकारों के मध्य अपनी छवि कोहिनूर हीरे की तरह अनमोल कर ली है। वे अब तक देश के आठ अति विशेष दिगम्बर संतों का 'चरित' लिख चुके हैं। कठिन बात यह है कि उनका नायक मौन साधक होता है, अतः ऐसे में लेखनी की गति रुकी रह जाने का खतरा रहता है, किन्तु सरल जी की लेखनी ने क्षणभर भी विराम नहीं लिया, सतत चलती रही।

सम्प्रति उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी की जीवनी 'ज्ञान के हिमालय' लिखकर उन्होंने न केवल स्वतः को, बल्कि अपने नगर जबलपुर को 'जीवनचरितों' के हिमालय पर पहुँचा दिया है। ग्रन्थ में विदुषी ब्र. अनीता शास्त्री उन्हें 'दो शब्दों' के माध्यम से अतिश्रेष्ठ कथाकार निरूपित करती हुई उनकी लेखन शैली को कालजयी बतलाती हैं, कृति तो है ही कालजयी।

लेखक ने गाथा में अनेक उपशीर्षकों को उजास देते हुए कथा को ऐसी गति प्रदान की है जो पाठक को लगातार

बांधे रहती है। संत शिरोमणि उपाध्याय श्री के जीवन के 43 वर्षों की झलक ऐसी समाहित की गई है जैसे लेखक हर पल समीप खड़ा रहकर देखता रहा हो, सो यह ग्रंथ चरणानुयोग के अंतर्गत चरित्र ग्रन्थ के रूप में प्रतिपादित है और प्रथमानुयोग के श्रेष्ठ दायरे में अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है।

अक्षर-अक्षर पिरोकर आदरणीय लेखक श्री 'सरल' ने महान श्रम किया है, जिसका मूल्यांकन केवल विद्वर्ग ही कर सकता है। मैं उनकी लेखनी को नमन करता हूँ, जो महान संतों के 'चरित्र चित्रण' में अहर्निश तत्पर मिलती है। महान् कथाशिल्पी को बधाई और आदर प्रदान करता हूँ जो 'हिमालय' के आठ रूप विविधता के साथ पाठकों तक पहुँचा चुके हैं।

प्रस्तुत पुस्तक का नाम	- ज्ञान के हिमालय
लेखक	- श्री सुरेश सरल
पृष्ठ संख्या	- 300 सजिल्द
साइज	- 19 X 25 से.मी.
मूल्य	- दो सौ रुपये मात्र
प्रकाशक	- आचार्य शंति सागर 'छाणी' स्मृति ग्रन्थमाला, बुढ़ाना (उ.प्र.)

संजीवनी नगर, जैन मंदिर के सामने,  
जबलपुर म.प्र.

## आर्यिका पूर्णमति जी का ससंघ अजमेर में पदार्पण

अजमेर नगर के महान् पुण्योदय से परमपूज्य संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की परम शिष्या विदुषि आर्यिका रत्न १०५ श्री पूर्णमति माताजी ससंघ का मंगल पदार्पण दिनांक २.२.२००५ को अजमेर में हुआ। दिनांक ४.२.२००५ को श्री १००८ शान्तिनाथ जिनालय राजभवन के पास सिविल लाइन्स अजमेर में शिला स्थापना समारोह अत्यन्त हर्षोल्लास प्रभावनापूर्वक आर्यिका ससंघ के पावन सान्निध्य में सुसम्पन्न हुआ।

इसके पश्चात् आर्यिका संघ ने सर्वोदय कॉलोनी में धर्मगंगा प्रवाहित की।

पार्श्वनाथ कॉलोनी आतेड़ रोड, नव निर्मित भव्य जिनालय परिसर में आर्यिका संघ ने जो ज्ञानार्जन कराया, अत्यन्त परम मार्मिक प्रवचनों से हृदय परिवर्तन किया, अवर्णनीय है।

वर्तमान में आर्यिका संघ का प्रवास पंचशील नगर में है। श्रोताओं की उपस्थिति दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

निश्चित ही धर्मनगरी अजमेर में धर्मानुरागी अत्यन्त भाग्यशाली हैं, जिन्हें अनायास ऐसे परम पावन, परम प्रभावी, कुशलतम प्रवचनकार पूर्णमति माताजी ससंघ का प्रवचन एवं अन्य धर्मिक कार्यक्रमों में भाग लेने का सुअवसर प्राप्त है।

भीकमचन्द पाटनी, स. मंत्री

## तीव्र विरोध



हमने 'धर्ममंगल' मासिक एवं 'प.पू.आ. शांतिसागरजी महाराज सत्य प्रकाशक मंच' की ओर से आळते-कुंथुगिरि (जिला-कोल्हापुर, महाराष्ट्र) में दिनांक ४ से १३ फरवरी तक होने वाले पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के बारे में एक परचा निकाला और दिगंबर जैन समाज में केवल कोल्हापुर, सांगली एवं बेलगाँव जिले के कुछ हिस्से में पोस्ट से भेजा। "कुंथुगिरी-आळते के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के बारे में समाज को सोचना चाहिए" ऐसे शीर्षकवाले इस परचे में "यह पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करानेवाले आचार्य कुंथुसागर के संघ की एक माताजी का चरित्र जैन परंपरा को कलंकित करने वाला है और पूज्य भगवान् की मूर्ति की प्रतिष्ठापना चारित्रभ्रष्ट संघ के हाथों न करायी जाये यह 'कुंथुगिरी-आळते के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के बारे में समाज को सोचना चाहिए।' इस प्रकार का आवाहन इस परचे के जरिए किया गया था। इससे आचार्य कुंथुसागरजी के संघ के बारे में हकीकत समाज के सामने आ गयी। 'वीर सेवादल' इस सशक्त संगठन ने इस कार्यक्रम में अपनी सेवाएँ न देने का और कार्यक्रम का बहिष्कार करने का निर्णय लिया ऐसी जानकारी हमें मिली। (हम वीर सेवादल का हार्दिक अभिनंदन करते हैं।) इससे हमारे कार्य में मजबूती आ गयी। इस बारे में आळते को समक्ष जाकर वहाँ के लोगों को यह बात समझाकर उनका हृदयपरिवर्तन कराने के हेतु श्री अभयकुमार बरगाले, (किरण गैस एजेन्सी, इचलकरंजी) के साथ हमारे कुछ कार्यकर्ता दिनांक ४.२.२००५ को सुबह आळते गये। तब आळते के कुछ लोगों ने उनके गाँव में आने का विरोध किया। कार्यकर्ताओं ने कहा, 'ठीक है, आप हमारी बात सुनिए, न सुनना हो तो हम शांति से चले जायेंगे' तब वे आचार्य के पास चलो कहने लगे। हमारे कार्यकर्ता शंतिपूर्वक आचार्य जी से चर्चा करने को तैयार थे। फिर भी उन्हें उठाकर धक्कामुक्की कर गाड़ी से खींच कर पटकवा गया और दूसरी गाड़ी में घसीट कर बिठाया गया। गाड़ी में भी मारपीट करते हुए आचार्य कुंथुसागरजी के पास पहुँचने से पहले ही आळते के प्रतिष्ठा महोत्सव के स्थान पर ले जाकर जबरदस्त मारपीट की। इससे उन कार्यकर्ताओं के आँखों, मुँह और शरीर पर बहुत मार लगी, गंभीर जख्मी हुए। श्री अभय कुमार बरगाले का मोबाइल व अन्य वस्तुएँ भी वे लोग छीनकर ले गये। यह जबरदस्ती अपहरण कर मारपीट करने का गंभीर केस बन गया है। पुलिस आयी और जख्मियों को हातकणंगले के सरकारी अस्पताल में ले गयी, इलाज कराया। बाद में श्री अभयकुमार बरगाले इचलकरंजी के प्रायवेट अस्पताल में चार/पाँच दिन एडमिट रहे और इलाज कराया। इस प्रकार से आचार्य कुंथुसागरजी के भक्त शंतिपूर्वक विषय को समझने के बजाय मारपीट कर दहशत फैला रहे हैं और दबाव उत्पन्न कर रहे हैं। इसके पीछे आचार्य कुंथुसागरजी की प्रेरणा होने की आशंका या संभावना है। यद्यपि मारपीट करने वालों पर पुलिस केस हो गया है, फिर भी मामले को दबाने के लिए महासभा के श्रेष्ठी नेता ऋद्धों पहुँचकर अपनी ताकत लगा रहे हैं और समाज के सामने झूठे बयान देकर समाज को गुमराह कर रहे हैं। पू.आ. शान्ति सागरजी महाराज की निर्दोष परंपरा के माननेवाले सत्यप्रकाशक मंच के कार्यकर्ताओं ने कहीं भी आत्मसंयम नहीं छोड़ा है। परंतु निर्दोष परंपरा के रक्षण में भी वे शंतिपूर्वक कार्य करते रहेंगे, यही इससे सिद्ध होता है। दिगंबर जैन समाज का आवाहन है कि वे इस प्रकार के दहशत एवं दबावतंत्र को स्थान न देकर सत्य जानें।

आचार्य शांतिसागर सत्यप्रकाशक मंच व मासिक धर्ममंगल की ओर से हम श्री अभय बरगाले और उनके साथियों के साथ की गयी इस मारपीट का तीव्र विरोध करते हैं और सबको इस विषय की ओर शंतिपूर्वक विचार करने का, समाज में शांति बनाये रखने का आवाहन करते हैं।

प्रा. सौ. लीलावती जैन, संपादिका धर्ममंगल  
१, सलीज अपार्ट., ५९ सानेवाडी, औंध-पुणे ४११००७  
फोन : ०२०-२५८८७७९३

### संपादकीय टिप्पणी

आतंकवाद का सहारा लेकर उच्छृंखल आचार को जिनशासन में प्रतिस्थापित करने की असभ्य, अधार्मिक, दानवी प्रवृत्तियाँ दिनों-दिन बढ़ती जा रही हैं। जिनशासनभक्त मूकदर्शक बनकर अपनी आँखों से जिनशासन की अन्त्येष्टि के लिए की जाने वाली आसुरीलीला कब तक देखते रहेंगे ?

सम्पादक

## गोम्मटेश्वर महामस्तिकाभिषेक के लिए निवेदन : श्री फल समर्पित

बहोरीबंद,

बाहुबली के चरणों में नत हो बारंबार,

विद्यासागर कब बन्नू भवसागर कर पार।

बाहुबली भगवान का 21 वी शताब्दी में प्रथम मस्तकाभिषेक मनाया जा रहा है। हमारा चातुर्मास थूबौन जी में हुआ था। मौजमाबाद (राजस्थान) के क्षुल्लक जी ने भावना रखी थी, उसी को ध्यान में रखकर "गोम्मटेशथुदि" बनाई थी। बाहुबली की प्रतिमा की विश्व में कोई मिसाल नहीं है। हजारों वर्षों से आत्मस्वरूप को बिना कुछ बोले बतला रही है। जो दर्शन करने आता है उसे उसी की भाषा में उपदेश प्राप्त होता है। अगले साल इसका आयोजन रखा गया है। निवेदन की कोई बात नहीं है। बाहुबली तो बाहुबली हैं, उनके चरणों में जो यात्री आते-जाते रहते हैं उन्हीं से वहां वीतरागता की रक्षा होती है। जब तक वीतरागता का आलंबन नहीं लगे तब तक संसार में पार नहीं हो सकोगे। बाहुबली के दर्शन मात्र से वीतरागता का बोध होता है इसी मर्म के माध्यम से भट्टारक चारुकीर्ति को हमारी तरफ से आशीर्वाद पहुँचा देना। उक्त आशय के उद्गार संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने अतिशय क्षेत्र बहोरीबंद (कटनी) (म.प्र.) में गोमटेश्वर भगवान श्री बाहुबली स्वामी मस्तकाभिषेक महोत्सव समिति 2006 द्वारा महामस्तिकाभिषेक में ससंघ पधारने के लिए, श्रीफल समर्पित करनेवाले पदाधिकारियों एवं कार्यकर्ताओं को शुभाशीष प्रदान करते हुए कहे।

आचार्य श्री ने कहा "एक समय था जब भट्टारक बाहुबली के समान चर्या निभाते थे और सभी को वीतरागता का पाठ पढ़ाते थे। अब वह कपड़ों में आवृत हो गए हैं। वे कम से कम पूर्व स्थिति में आ जाते। अब वे वस्त्र में हैं, उन्हें अब वीतरागता में आ जाना चाहिए। सेठी जी आप उन्हें मेरी तरफ से कह देना। दक्षिण में भट्टारकों के बिना कुछ भी सम्भव नहीं होने की जो बात है, वह ठीक नहीं है। क्योंकि वस्त्रधारी से प्रभावना कैसी होगी निर्मल सेठी जी से यह बात प्रमुखता से कहना है। वीतरागता के मार्ग में विचलित न हों। वह एक युग था जब उन्हें वस्त्र धारण करना पड़े। अब इस युग में संघ में एक ऐसी टोली बन गई है, जिसमें इंजीनियर, सी.ए., फार्मसी, डाक्टर, विदेश सेवा में रत तथा उच्च शिक्षा में रत, उच्चशिक्षित वर्ग तत्त्वज्ञानी वीतरागता के

मार्ग पर चल पड़े हैं, अब भट्टारकों को भी वीतरागता का मार्ग ग्रहण कर लेना चाहिए।

भट्टारक चारुकीर्ति के कार्यकाल में यह तीसरा कार्यक्रम है। वे दिगम्बर बनें तो बाहुबली भी संतुष्ट हो जावेंगे। कल दौड़कर/चलकर नहीं आता, हम चलते हैं, तब वह आ जाता है।"

आचार्यश्री ने कहा, "पिच्छी-कमंडलु हमारा मूलदर्शन है उन्हीं के माध्यम से प्रभावना होती है। बाहुबली की रक्षा आप सभी करेंगे। सभी जन समृद्धिशाली होकर करें। हमारे बाहुबली की रक्षा के लिए अधिक अर्थ की आवश्यकता नहीं है। आप करोड़ों रुपया शादी में खर्च करते हैं, उसका चौथाई भी वहाँ पहुँचे, तो काम हो जावेगा। आप भी अपना कर्तव्य करें, जिससे भट्टारक पूर्व (वीतराग) रूप में आ जावें। पिच्छी न रखें, क्योंकि यह संयम की रक्षा का उपकरण है। पिच्छीधारी आर्षमार्ग में पैसों की रक्षा न करें।"

नरेश कुमार सेठी, अध्यक्ष भा.दि.जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी एवं गोम्मटेश्वर भगवान् बाहुबली स्वामी महामस्तिकाभिषेक महोत्सव समिति 2006 ने आचार्यश्री को समारोह समिति के प्रतिनिधि मंडल के साथ श्रीफल समर्पित करते हुये अपने निवेदन में कहा कि, "21वीं सदी का यह प्रथम महामस्तकाभिषेक है। आप अपने महासंघ के साथ समारोह में पधारें, यही हमारा निवेदन/प्रार्थना है। श्रवलबेलगोला का यह आयोजन समूचे विश्व के लिये एक ऐतिहासिक समारोह होगा। जन-जन की आस्था गोम्मटेश्वर से जुड़ी है और हमारी आस्था आपमें है। आपका सान्निध्य मिल जाने से समारोह अद्वितीय हो जायेगा। आपकी उपस्थिति का लाभ श्रमणसंघों को भी मिलेगा, जिसके फलस्वरूप हमारी अनेक समस्याओं का समाधान स्वतः हो जायेगा।"

प्रतिनिधि मंडल में निर्मलकुमार सेठी स्वागताध्यक्ष गोमटेश्वर समारोह एवं राष्ट्रीय अध्यक्ष भा.दि.जैन महासभा, प्रा.डी.ए. पाटिल उपाध्यक्ष महोत्सव समिति, डी.आर. शाह संयोजक कलश आवंटन समिति, मदनलाल बैनाड़ा उपाध्यक्ष भा.दि.जैन महासभा, श्रीपाल गंगवाल अध्यक्ष त्यागी सेवा समिति, राजेश पहाड़े संयोजक त्यागी सेवा समिति, रतनलाल नरपत्या अध्यक्ष भा.दि.जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी राजस्थान प्रांत, अभिनंदन सांधेलीय मंत्री भा.दि.जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी मध्यांचल, बाबूलाल पहाड़े हैदराबाद सम्मिलित थे।

## तीर्थक्षेत्रों को शांतिमयी एवं पवित्र बनायें : आचार्य श्री विद्यासागर जी

पाटन, तीर्थक्षेत्रों पर अच्छी व्यवस्थायें होना चाहिये। इसके लिए समय-समय पर गतिविधियां होते रहना भी जरूरी हैं, परन्तु यह ध्यान रहे कि तीर्थक्षेत्र शांतिमयी एवं पवित्र बने रहें। तीर्थक्षेत्र हमारी आस्था और संस्कृति के प्रतीक हैं। तीर्थक्षेत्रों के प्रबंधक तीर्थक्षेत्रों को सैर-सपाटे के स्थान न बनायें। क्षेत्रों पर वस्तु का ध्यान नहीं दिया जा रहा है। कार्य होना चाहिये 10 के स्थान पर 100 रुपया भी खर्च हो जाये, तो कोई बात नहीं। 1000 वर्ष तक तीर्थक्षेत्र सुरक्षित रहें, हमारी शक्ति इस ओर लगे। सभी कार्य सुनियोजित हों, विज्ञान-वास्तु और आधुनिकता का भी समावेश करें। उक्त आशय के उद्गार संतशिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र बहोरीबंद में भारतवर्षीय दिगंबर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी मुंबई के राष्ट्रीय अध्यक्ष नरेश कुमार सेठी से तीर्थ क्षेत्रों के विकास के लिए आवश्यक मार्गदर्शन माँगे जाने पर व्यक्त किये।

भा. दि. जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष नरेश कुमार सेठी ने तीर्थराज सम्मेशिखरजी, गिरनारजी पर चल रहे मुकदमों के साथ जैन समाज को अल्पसंख्यक दर्जा प्राप्त हो, के संबंध में तीर्थक्षेत्र कमेटी द्वारा किये जा रहे प्रयासों की जानकारी देते हुए आचार्यश्री से इस संबंध में मार्गदर्शन मांगा। आचार्य श्री ने सम्मेशिखर जी पर चल रहे श्वेतांबर समाज के मुकदमों के संदर्भ में यही मार्गदर्शन दिया कि पूरी तैयारी के साथ अपना पक्ष कोर्ट में रखें। शिखरजी हमारे आस्था का केन्द्र है। शिखरजी में आज जो हो रहा है वह चिंतनीय है। शिखरजी की रक्षा करना बहुत जरूरी है। सम्मेशिखर जी में पर्वत पर ठहरने और भोजन की सुविधा अच्छी बात नहीं है। वहां की पवित्रता बनी रहे। वहाँ (पर्वत पर) कोई भी न रहे, न ही खानपान की व्यवस्था हो। यात्रियों की सुरक्षा के लिए आवश्यक प्रबंध जुटाये जायें।

जैन समाज के लोग अधिक से अधिक गिरनारजी के यात्रा पर जायें। वहाँ जैन समाज को बसायें तथा उनकी अजीविका का भी प्रबंध करें।

वर्ष 2006 में गोमटेश्वर बाहुबलि भगवान् का श्रवणबेलगोला में 12 वर्ष बाद आयोजित महामस्तिकाभिषेक में संसंध पधारें, के निवेदन किये जाने के उत्तर में आचार्य श्री ने कहा कि संघ में नवदीक्षित मुनियों के अध्ययन-अध्यापन का कार्य चल रहा है। गोमटेश्वर बाहुबलि का महामस्तिकाभिषेक अच्छे से करें। श्रवणबेलगोला दूर है, इतनी दूर की यात्रा के

दौरान अध्ययन और संघस्थ साधुओं का अध्यापन सहज संभव नहीं।

श्रवणबेलगोला के भट्टारक चारुकीर्ति जी को शुभाशीष देते हुए आचार्यश्री ने कहा कि भट्टारकों का स्वरूप निश्चित हो। वीतरागविज्ञान पैसों से नहीं चलता। आर्ष मार्ग में अर्थ का क्या काम ?

इस अवसर पर अभिनंदन सांधेलीय, पत्रकार-मंत्री-भा.दि.जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी मध्यांचल एवं संतोष सिंघई अध्यक्ष दि. सिद्धक्षेत्र कुंडलपुर भी उपस्थित थे।

निर्मलकुमार सेठी राष्ट्रीय अध्यक्ष भा.दि. जैन महासभा लखनऊ द्वारा रखे गये प्रश्न के उत्तर में आचार्य श्री ने कहा "जिन्हें आर्ष मार्ग में शंका है वे आर्यें में तत्त्वज्ञान के माध्यम से 5 मिनट में समाधान कर दूंगा। नेता स्वीकार करें, आप स्वीकार करें जनता अपने आप मानेगी, मीडिया का सहारा नहीं लेता हूँ।"

अभिनन्दन साँधेलीय, पाटन (जबलपुर)

## तीर्थक्षेत्र कमेटी एवं महासभा के अध्यक्ष कुंडलपुर में

पाटन, जन-जन की आस्था का केंद्र, बड़ेबाबा का दरबार कुंडलपुर (दमोह) तीर्थ पर भारतवर्षीय दिगंबर जैन महासभा के अध्यक्ष निर्मलकुमार सेठी, मुनिभक्त बाबूलाल पहाड़े हैदराबाद, डी.आर. शाह अध्यक्ष कर्नाटक प्रांत जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी, रतनलाल नरपत्या अध्यक्ष राजस्थान प्रांत जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, अभिनंदन सांधेलीय पत्रकार मंत्री भा.दि.जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी मध्यांचल, श्रीपाल गंगवाल औरंगाबाद, राजेश पहाड़े हैदराबाद ने पहुँचकर बड़ेबाबा के दर्शन कर अभिषेक कर पूजन अर्चन किया। तत्पश्चात् कुंडलपुर क्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष संतोष सिंघई एवं प्रबंधक सी.के. जैन ने निर्माणाधीन बड़ेबाबा के भव्य जिनालय स्थल का निरीक्षण कराते हुए निर्माण कार्य की विस्तृत जानकारी दी। बड़ेबाबा के निर्माणाधीन जिनालय की रूपरेखा तथा व्यवस्थित निर्माणकार्य की सभी ने सराहना की।

कुंडलपुर दर्शन/वंदन कर सभी जन बहोरीबंद तीर्थ पहुंचे जहाँ संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के दर्शन किये तथा उनका मार्गदर्शन प्राप्त कर सभी ने संघस्थ मुनिराजों के दर्शन कर आशीर्वाद प्राप्त किया। तत्पश्चात् सभी तीर्थसेवक समीपस्थ पुष्पावती नगरी के जो कटनी जिला में बिलहरी ग्राम के नाम से जाना जाता है, मंदिर का अवलोकन



किया, साथ ही पुराने मंदिर की दीवाल को अलग करते समय उससे निकली 30 भव्य चित्ताकर्षक अष्टप्रातिहार्ययुक्त जिन प्रतिमाओं का अवलोकन किया।

सभी जिन प्रतिमायें मनोहारी हैं। सुंदर कलात्मक हैं, उन्हें देखकर अति प्रसन्नता व्यक्त की। भा.दि.जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी एवं भा.दि.जैन धर्म संरक्षणी सभा के अध्यक्ष द्वारा इन्हें व्यवस्थित रखने के लिए आवश्यक राशि उपलब्ध कराने का विश्वास दिलाया। इस नगर में जैनधर्म, बौद्धधर्म तथा हिंदू धर्म के पुरावशेष बड़ी मात्रा में हैं। ग्रामवासियों ने जानकारी दी है कि अभी भी अनेक स्थलों पर जैन मंदिरों के भग्नावशेष पड़े हैं जो अपने अंदर जिन प्रतिमाओं को समेटे हैं। बिलहरी के दर्शन कर सभी दिंगबर जैन तीर्थ पनागर (जबलपुर) के दर्शन कर पिसनहारी मढ़िया जबलपुर पहुँचे और पर्वत पर जाकर श्रमतीर्थ पिसनहारी तथा नंदीश्वर द्वीप जिनालय के दर्शन कर संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की आज्ञानुवर्ती आर्यिकारत्न दृढ़मति माताजी के दर्शन कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।

अभिनंदन सांघेलीय

पाटन (जबलपुर)

### श्रुत महोत्सव सानंद सम्पन्न

बीना (सागर) म.प्र. में १९-२० फरवरी २००५ को परम पूज्य श्री १०८ सरलसागर जी महाराज के सुशिष्य परमपूज्य मुनि श्री १०८ ब्रह्मानन्दसागर जी महाराज, मुनि श्री १०८ अनंतानंतसागर जी महाराज के पुनीत सानिध्य में प्राचीन पाण्डुलिपियों के संकलन, संरक्षण, संवर्द्धन एवं प्रचार-प्रसार के लिए प्राण-पण से समर्पित अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान बीना का १३वां स्थापना दिवस समारोह विविध कार्यक्रमों के साथ आशातीत सफलता के साथ सम्पन्न हुआ।

१९ फरवरी २००५ को अनेकान्त ज्ञान मंदिर बीना में सरस्वती आराधना के साथ सामूहिक भक्तामर स्तोत्र का पाठ किया गया। तदनन्तर अनेकान्त ज्ञान मंदिर की विविध उपलब्धियों के संदर्भ में डॉ. ब्र. मणिप्रभा दीदी सुश्री कृति जैन एवं शरद जैन ने प्रकाश डाला।

२० फरवरी २००५ को श्रुतधाम स्थल पर १३वां स्थापना दिवस समारोह एवं श्रद्धेय क्षु. १०५ गणेशप्रसाद वर्णी संगोष्ठी का शुभारम्भ मुख्य अतिथि श्री ऋषभकुमार जी मड़ावरावाले सागर के ध्वजारोहण एवं डॉ. प्रकाश चन्द्र सोधिया महाराजपुर के द्वारा दीप प्रज्वलन किया गया। इसके पूर्व मंगलाचरण सुश्री नबीता, रानु एवं चुनमुन जैन मुंगावली ने किया। बुन्देलखण्ड के

युग पुरुष श्रद्धेय वर्णी जी के असाधारण व्यक्तित्व पर अनेक वक्ताओं ने प्रकाश डाला। ब्र. संदीप जी 'सरल' ने वर्णी जी को सोलहवानी के शुद्ध सुवर्णवत् वर्णी जी को अटूट आस्था के मेरुशिखर, विनम्रता के धनी अभीक्षण ज्ञानोपयोगी, उदार हृदय की बेजोड़ मिसाल, ज्ञानरथ के प्रवर्तक, साहसिक संकल्प के धनी, कुशल समाज सुधारक, नारी समाज उन्नायक, आत्मसमीक्षक, प्रभावक वाणी के धनी, श्रमणसंस्कृति के यशस्वी साधक, समयसारमय, वात्सल्यता के अथाह सागर आदि सोलह विशेषणों से अलंकृत किया। आबाल वृद्ध नर-नारियों के लिए वर्णी जी द्वारा प्रदत्त इन पंच शांतिसूत्रों को अपनाने की प्रेरणा ब्र. 'सरल' जी ने दी।

१. सच्चे हृदय से प्रभु की भक्ति करो। २. प्रतिदिन शक्तिपूर्वक दान दो। ३. ज्ञान की आराधना में कुछ समय दो। ४. अष्टमी चतुर्दशी एवं पर्व के दिनों में ब्रह्मचर्य का पालन करो।

प्रो. ए.के. जैन

अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान, बीना (सागर) म.प्र.

### वीर अहिंसक संगठन की स्थापना

भगवान् महावीर के 'जियो और जीने दो' के सिद्धांत को मूर्तरूप देने के उद्देश्य से 'वीर अहिंसक संगठन' की स्थापना की गई है। संगठन का राष्ट्रीय कार्यालय 70, कैलाश हिल्स, ईस्ट ऑफ कैलाश, नई दिल्ली-110065 में रहेगा।

संगठन के राष्ट्रीय अध्यक्ष का कार्यभार डॉ. धन्य कुमार जैन, पूर्व न्यायाधीश देख रहे हैं। डॉ. जैन समाज एवं तीर्थ संबंधी मामलों के पैरवीकार हैं, और समाज हित के महती कार्यों को निष्पादित कर रहे हैं, उनके द्वारा एवं उनके आशीष से समाजहित के अनेक कार्य किए जा रहे हैं। श्री मणीन्द्र जैन संगठन के महासचिव हैं जो प्रतिष्ठित गीतकार, संगीतकार रवीन्द्र जैन के अनुज हैं, समाज हितार्थ कार्यों में सदैव अग्रणी रहे हैं।

संविधान के अंतर्गत अल्पसंख्यकों के लिए सुरक्षित अधिकारों को प्राप्त करना तथा साथ-साथ शिक्षा, रोजगार, प्रौढ़-संरक्षण एवं वैवाहिक-संबंध सेवाएँ प्रदान करना संगठन के प्रमुख उद्देश्य हैं।

संगठन के सदस्य एवं संयोजक बनने के इच्छुक व्यक्ति संगठन के राष्ट्रीय कार्यालय 70, कैलाश हिल्स, नई दिल्ली-110065 फोन : 9810043108, 26839445 और 51325868 से संपर्क कर सकते हैं।

## श्री पार्श्वनाथ ब्रह्मचर्याश्रम गुरुकुल, एलोरा (औरंगाबाद, महाराष्ट्र) में आचार्य विद्यासागरभवन व आचार्य आर्यनंदी श्रुत भण्डार का उद्घाटन

श्री पार्श्वनाथ ब्रह्मचर्याश्रम गुरुकुल संस्था के प्रांगण में दानवीर श्री अशोककुमार जी पाटणी (आर.के. मार्बल, मदनगंज किशनगढ़, राजस्थान) के वृहत योगदान से नव निर्मित आचार्य विद्यासागर भवन व श्री ज्ञानचंदजी बाबूलालजी जैन लुहाड़िया के योगदान से निर्मित आचार्य आर्यनंदी श्रुत भण्डार (ग्रंथालय) की वास्तु का उद्घाटन समारोह दि. १३ फरवरी २००५, रविवार को उत्साह के साथ सम्पन्न हुआ। इस उपलक्ष्य में बनाए गये विशेष प.पू. १०८ उपाध्याय श्री जयभद्र सभामंडप में पंडित ब्र. महावीर भागे अण्णा, प्रदीप माद्रप गुरुजी एवं गुरुकुल के छात्रों ने मंगलाचरण प्रस्तुत किया। मंच पर कार्यक्रमाध्यक्ष पंडित रतनलाल जी बैनाड़ा (आगरा), गुरुकुल के मंत्री स्वतंत्रता सेनानी पन्नालाल जी गंगवाल, आचार्य विद्यासागर भवन के उद्घाटक श्री देवेन्द्रकुमार जी सिंघई मुंगावली (म.प्र.), आचार्य आर्यनंदी श्रुत भंडार के उद्घाटक बाबूलाल जी जैन लुहाड़िया (भुसावल), गुरुकुल सदस्य डॉ. प्रेमचंदजी पाटणी, गुरुकुल संस्थाध्यापक स्वतंत्रता सेनानी श्री तनसुखलालजी ठोले (सज्जनपुर), अरविंद कुमारजी सिंघई मुंगावली (म.प्र.), शंतिलालजी गोधा (रतलाम, म.प्र.), पवनकुमारजी झांजरी (नंदुरबार), संदीप कुमार जी रमणलालजी कासलीवाल (नांदगांव), प्रो. राजकुमार जी चवरे (कारजा) और गुरुकुल सदस्य श्री वर्धमान जी पांडे, देव कुमार जी कान्हेड आदि उपस्थित थे। गुरुकुल संस्था की ओर से मंच पर उपस्थित सभी मान्यवरों का शॉल, श्रीफल और भगवान् पार्श्वनाथ का रंगीन चित्र देकर स्वागत किया गया।

इस अवसर पर भवन और ग्रंथालय के नाम फलक का तथा विद्यासागर भवन में एलोरा पहाड़ मंदिर अतिशय क्षेत्र के श्री १००८ भगवान् पार्श्वनाथ, आचार्य समंतभद्र महाराज, आचार्य आर्यनंदी महाराज, आचार्य विद्यासागर महाराज एवं उपाध्याय जयभद्र महाराज के चित्रों का मान्यवर अतिथियों के करकमलों से अनावरण किया गया।

श्री पन्नालाल जी गंगवाल ने कहा गत चातुर्मास में परमपूज्य आर्यिका अनंतमति माताजी एवं परमपूज्य आर्यिका आदर्शमति माताजी ने एलोरा गुरुकुल में गुरुदेव आचार्य विद्यासागर जी के नाम से भवन होना चाहिए ऐसी अपेक्षा व्यक्त की थी। आज दाताओं के सहयोग से वह वास्तु बन गई। उन्होंने कहा कि आचार्य समंतभद्र महाराज, आचार्य आर्यनंदी महाराज व उपाध्याय जयभद्र महाराज की प्रेरणा से स्थापित इस गुरुकुल की उन्नति दानवीर समाज और सेवाभावी कार्यकर्ता, अध्यापक इनके सहयोग से हो रही है। इसी अवसर पर परमपूज्य विनीत सागर महाराज का मार्मिक प्रवचन हुआ।

श्री देवेन्द्रकुमार जी सिंघई ने आचार्य विद्यासागर महाराज के कार्यों की जानकारी देते हुए संस्था की आर्थिक कठिनाई में विद्यार्थी एवं बालकों के लिए सहयोग करने का आश्वासन दिया। कार्यक्रम के अध्यक्ष पंडित रतनलाल जी बैनाड़ा ने कहा कि विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में पढ़ाई का अनन्य साधारण महत्व है। जनगणना के अनुसार महाराष्ट्र में जैनों की संख्या सबसे अधिक है। परमपूज्य आर्यनंदी महाराज व परमपूज्य समंतभद्र महाराज ने एलोरा गुरुकुल की स्थापना की, यह जैन समाज के लिए अलौकिक कार्य है।

उन्होंने इस गुरुकुल संस्था को सभीप्रकार का आवश्यक सहयोग देने का आश्वासन दिया। कार्यक्रम का संचालन श्री वर्धमानजी पांडे, श्री निर्मल कुमार ठोलिया और गुलाबचंद बोरालकर ने किया। डॉ. प्रेमचंद पाटणी ने आभार व्यक्त किया।

अम्बरकर रा.व.

## श्री पार्श्वनाथ ब्रह्मचर्याश्रम (गुरुकुल) एलोरा की प्रमुख विशेषताएँ

वर्तमान समय में छात्रों को संस्कारवान बनाने एवं जैन तत्वज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए गुरुकुल पद्धति से अध्ययन की परमावश्यकता है।

प.पू. समन्तभद्र महाराज तथा प.पू. तीर्थरक्षाशिरोमणि आर्यनन्दी महाराज के अविस्मरणीय योगदान से 'श्री पार्श्वनाथ ब्रह्मचर्याश्रम(गुरुकुल)' एलोरा में स्थापित हुआ था। जो वर्तमान में छात्रों को संस्कारवान बनाने एवं जैन तत्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में महाराष्ट्र में अपना अभूतपूर्व योगदान प्रदान कर रहा है।

छात्रों को सभी सुविधाएँ गुरुकुल परिसर में ही उपलब्ध हैं। छात्रावास, भोजनालय, विद्यासागर भवन, दो धर्मशाला, जिनमंदिर, त्यागीभवन, आरोग्यधाम आदि। प.पू.आ. विद्यासागर जी महाराज की सुशिष्या प.पू. आर्यिका अनन्तमति जी एवं आदर्शमति जी का चातुर्मास पिछले वर्ष एलोरा में ही सम्पन्न हुआ था। आपकी प्रेरणा से 6000 स्क्वायर फिट में लगभग 25 लाख की लागत से आ. विद्यासागर हॉल का निर्माण किया गया। इसमें 11 लाख रु. की राशि श्री अशोक जी पाटनी (आर.के.मार्बल) किशनगढ़ राजस्थान द्वारा प्रदान की गई।

गुरुकुल में समर्पित एवं अनुभवी स्टॉफ तथा काकाजी जैसे समर्पित कार्यकर्ताओं के प्रयास से छात्रों को लौकिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान कर संस्कारवान विद्यार्थी बनाया जा रहा है।

गुलाबचन्द बोरालकर

आचार्य  
विद्यासागर  
भवन  
का  
उद्घाटन  
समारोह

णमो लोए सठवसाहणं

आचार्य विद्यासागर भवन

श्री अशोककुमारजी पाटणी  
आर.के. मार्बलस के योगदानसे



उद्घाटन समारोह में दीप प्रज्वलित करते हुए  
बाये से दाये - प्रा. राजकुमार चवरे, देवेन्द्रकुमार जी सिंघई,  
पं. रतनलाल जी बैनाडा, पन्नालाल जी गंगवाल



आचार्य विद्यासागर भवन का फीता काटकर  
उद्घाटन करते हुए श्री देवेन्द्र कुमार सिंघई, मुंगावली



उद्घाटन समारोह में प्रास्ताविक भाषण करते हुए  
संस्था सचिव श्री पन्नालाल जी गंगवाल (काकाजी)



आचार्य विद्यासागर भवन का सम्पूर्ण दृश्य

आचार्य विद्यासागर भवन  
उद्घाटन समारोह

दि 13/12/2009

अध्यक्ष : पं. श्री. रतनलालजी बैनाडा , आगरा (उ.प्र.)  
उद्घाटक : श्री. देवेन्द्रकुमारजी सिंघई , मुंगावली (म.प्र.)  
प्रमुख अतिथी : श्री.पं प्रो. रतनचंदजी जैन , भीवाड (म.प्र.) सहायक - जिनभाषित  
श्री. अरविंदकुमारजी सिंघई , मुंगावली (म.प्र.)  
श्री. शांतीलालजी गोधा , रतलम (म.प्र.)  
श्री. पवनकुमारजी महेंद्रकुमारजी झांजरी , सुदूरवार (म.प्र.)  
श्री. संदीपजी रमनलालजी कासलीयाळ , नांदगाव सिंगली, जे.वा.प.  
के उपस्थिती में संपन्न हुआ !

# महाराष्ट्र में 50 स्थानों पर शिक्षण शिविरों का वृहद आयोजन

परम पूज्य आचार्य श्री 108शांतिसागर जी महाराज की 50वीं पुण्यतिथि वर्ष के अवसर पर महाराष्ट्र में प्रथम बार 'श्रमण संस्कृति संस्थान सांगानेर (जयपुर) के अधिष्ठाता श्री रतनलाल जी बैनाड़ा' के सान्निध्य में लगभग 50 स्थानों पर सर्वोदय ज्ञान संस्कार शिक्षण शिविरों का महा आयोजन किया जा रहा है। शिक्षण शिविर निम्नप्रकार आयोजित होंगे :

- (1) बारामती (महाराष्ट्र) में दिनांक 18अप्रैल से 28अप्रैल 2005 तक। शिविर में बालबोध, छहदाला, तत्त्वार्थसूत्र समयसार आदि ग्रन्थों का अध्यापन कराया जायेगा।
- (2) कोपरगाँव (महाराष्ट्र) में दिनांक 1 मई से 15 मई 2005 तक। शिविर में बालबोध, छहदाला, तत्त्वार्थसूत्र, गोम्मटसार जीवकांड आदि ग्रंथों का अध्यापन कराया जायेगा।
- (3) औरंगाबाद (महाराष्ट्र) में 1 जून से 10 जून 2005 तक। शिविर में बालबोध, छहदाला, तत्त्वार्थसूत्र आदि ग्रन्थों का अध्यापन कराया जायेगा।

उपरोक्त स्थानों पर श्री दि. जैन श्रमण संस्कृति संस्थान सांगानेर (जयपुर) के अधिष्ठाता श्री रतनलाल जी बैनाड़ा एवं उनके सहयोगियों के द्वारा अध्यापन कराया जायेगा।

अन्य 47 स्थानों पर 'श्री दि. जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर' के करीब 40 छात्र विद्वान अध्यापन करायेंगे। सभी स्थानों पर हमारे बारामती निवासी डा. सुधीरकुमार शास्त्री के प्रयासों से काफी संख्या में शिविरार्थियों ने नाम लिखा है। संस्थान के विद्वानों द्वारा निम्नप्रकार शिविरों का आयोजन किया जायेगा :-

- प्रथम शिक्षण शिविर दिनांक 10 मई से 20 मई 2005 तक निम्न स्थानों पर एक साथ लगाया जायेगा :- पारोला, कुसुम्बा, धरणगांव, पिंपलगांव, शेंदुर्णी, नंदुरवार, दहिगांव, चौपड़ा, मालेगांव, नांदगांव, विहामांडवा, गोवराई, अंबेजोगाई, वार्शी, शिवुर, श्रीरामपुर, अहमदनगर, पैठण, पुणे (बेलनकरनगर), जालना, लासुरस्टेशन, कन्नड़ आदि।
- द्वितीय शिक्षण शिविर दिनांक 21 मई से 30 मई 2005 तक निम्न स्थानों पर लगाया जायेगा :- दानोली, कवठेसार, जयसिंगपुर, हासुर, सदलगा, बोरगांव, यडगुल, भोज, अब्दुललाट, पंढरपुर, मोडलिंग, करकंब, कुरूवार्दि, टेंभुर्णी, दाँड, फलटण, निगवण, लासुर्णे, बालवंदनगर, इंद्रापुर निरा, बड़गांव, करमाला, हुपरी, धुले।
- शिविरार्थियों की परीक्षा होगी, परीक्षा में विशेष गुण प्राप्त करने वाले शिविरार्थियों को सम्मानित किया जायेगा।
- शिविरार्थियों की उम्र 8से 70 वर्ष तक रहेगी।
- यह एक दुर्लभ अवसर है अतः अधिक से अधिक संख्या में भाग लेकर ज्ञानार्जन करें पुण्य लाभ कमावें।

संपर्क सूत्र

डॉ. सुधीर कुमार 'शास्त्री'

बारामती (महाराष्ट्र) मोबा. 9890510392